Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152mN39
G9

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

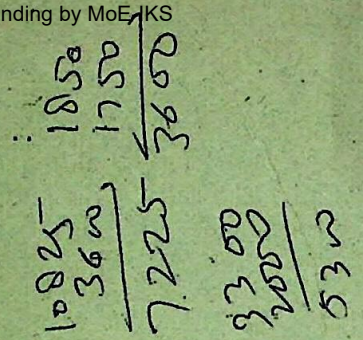

0152mN39 2966
G9
Maya Karyalaya
Maya.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक
माया कार्यालय
इलाहाबाद

R YEAR Rs.3/4-
PER COPY
-/5/-

इस अंक में सत्रह सुन्दर कहानियाँ

	पृष्ठ
'निर्गुण'	१
नरविजियन लेखिका,—जोहाना वुड ...	९
ी लेखक, इवान तुर्गनेफ़	१४
० श्री द्विजेन्द्र नाथ मिश्र	१५
मरा—ले० श्री लक्ष्मण सहाय माथुर ...	२३
ले० श्री चन्द्रकिरण देवी	३१
० 'कमल'	४६
—ले० श्रीहंसकुमार तिवारी ...	५७
० श्री कुंजविहारी लाल	६५
१०—चार घड़ियाँ—ले० श्री शान्ता जौहरी	७२
११—पोस्ट-मास्टर—ले० 'कुंज'	७८
१२—राजा—ले० श्री बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव ...	८०
१३—मक्कारी—ले० श्री शान्ताकुमारी देवी	८१
१४—महारानी—ले० श्री 'प्रेम' जौहरी, ...	८७
१५—उपहार—ले० श्री श्यामकुमारी देवी	९४
१६—भूल-चूक—ले० बी० एस० एस०	९९
१७—नव-दम्पति—इसी लेखक, पन्टन चेखव ...	१००

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह राह दिखाता है

मसल मशहूर है कि स्त्री ही गृहस्थी को बनाती है। चाय पीकर राह दिखाना तो उसका स्वाभाविक महत् कार्य है, क्योंकि चाय तो वास्तव में स्त्रीके अधिकार की ही चीज़ है। वही इसे बनाती और पिलाती है। स्त्री का हाथ लगकर इस पारिवारिक पेय में और भी ज्यादा मज़ा आ जाता है।

चाय तैयार करने का तरीका

ताज़ा पानी खौलाइये। साफ़ बर्तन ज़रा गर्म कर लीजिये। उसमें प्रत्येक के लिये एक और एक चम्मच अधिक बढ़िया भारतीय चाय रखिये। पानी खौल जाते ही चाय पर ढाल दीजिये। पाँच मिनटों तक चाय को सीझने दीजिये। इसके बाद प्यालों में ढाल कर दूध और चीनी मिलाइये।

एकमात्र पारिवारिक पेय

भारतीय चाय

इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड द्वारा प्रचारित

IK 94

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
J' .NA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 2966

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces, Central Provinces, Berar, Bihar and Orissa.

मार्च, १९३९

सम्पादक
क्षितीन्द्र मोहन मित्र
द्विजेन्द्र नाथ मिश्र

पूर्त्ति

('निर्गुण')

कई दिन बीमार रह कर जब अचानक बाप चल बसे, तो माँ ने दोनों लड़कों का स्कूल जाना बन्द करवा दिया; अब कहाँ से कापियों को पैसे आयें और कहाँ से फ़ीस जुटे! एक महीने तक दोनों के आगे स्कूल में ग़ैरहाज़िरी होती इस के बाद रजिस्टर से नाम कट गये। लड़कों में न चालाकी-चतुराई है, न ढङ्ग चार है। पढ़ते थे तो एक काम था, अब ख़ाली होकर आवारा घूमते-फिरते हैं। या तो मुहल्ले के किसी बालक को मारे-पीटेंगे या फिर आपस में गाली-गलौच करके रोयेंगे-धोयेंगे। देख-देख कर माँ कुढ़ती, कुढ़ कर कोसती, पर उन पर एक असर न होता। घड़ी दो-घड़ी कल-चैन से बैठे तो बैठे नहीं तो सड़क के पार जा निकले।

बाप मर गये हैं। अब माँ ही माँ है। बाप चुंगी में चपरासी थे, दस की नौकरी थी, पाँच और ऊपर से कमा लेते थे। अब तो और कोई आसरा नहीं। तीस-चालीस रुपये, जो पाई-पाई करके जोड़े गये थे, क्रिया-कर्म में ही खप गये। चूड़ियाँ फोड़ कर, बिना किनारी की सफ़ेद धोती पहिन कर, ख़ाली हाथों माँ खड़ी रह गई!

लड़के सयाने होते, लड़कों में गुन-सलीका होता तो कुछ करते-धरते। दस दिन रो-धोकर, अन्त में 'विधवा' घर से बाहर आई। चुङ्गी के सेक्रेटरी की बहू के बाली-बच्चा होने वाला है—मिसरानी चाहिये; चपरासी की 'बेवा' ब्राह्मणी है, वही रोटी बनायेगी। चार रुपये मिलेंगे।

माँ को सुबह-सुबह जाना होता है। ग्यारह बजे लौटती है। लड़कों के लिये तो और भी सुख हो गया है। बारह-एक पर जब रोटी पक जाती है तो आकर खा लेते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि खाने में आना-कानी दोनों में से एक भी नहीं करता, जो कुछ सामने धर दो चुपचाप खा लेंगे; दाल न होगी तो अकेली तरकारी से खा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेंगे, तरकारी न बनें तो 'नोन की डली' से भी खा लेंगे।

और भी एक थोड़ी सी अच्छाई है। माँ के आगे 'चुप' रहते हैं। वह अगर गाली देती रहे तो सुन लेते हैं, और अगर मारने लगे तो चुपचाप पिट लेते हैं।

मुहल्लेवाले उनसे घिन करते हैं, पास पड़ोस के सब लौंडे उनसे डरते हैं। माँ दुखी होकर कहती है—"मेरी कोख से ये ऐसे अभागे काहे को पैदा हुये!"

... ...

सेक्रेटरी साहब ने अपने बङ्गले के आगे एक बहुत बड़ा घास का 'लॉन' तैय्यार करवाया था। जब पुत्र पैदा हुआ तो उसी के नाम पर वहाँ एक 'क्लब' की स्थापना हुई। उस क्लब में बड़े-बड़े मेम्बर हुये। अनेक तरह के मनोविनोद और क्रीड़ाओं के साधन वहाँ जुटाये गये। स्वयं सेक्रेटरी साहब उसके 'प्रेसीडेण्ट' हुए।

क्लब के लिये नौकरों की भी ज़रूरत पड़ी। शिवसहाय उनके यहाँ का पुराना नौकर था; उसने बात कहते कई छोकरे हाज़िर कर दिये। पर शाम को बच्चे की माँ ने कहा कि—"तुम्हारे इस क्लब में अगर कोई जगह हो तो मिसरानी के लड़कों को कर दो; बेचारी हम से रोज़ कहती है। है कोई जगह?"

दूसरे दिन साहब ने लड़के बुलवाये और उसी दिन से नौकरी पर 'बहाल' भी कर दिये। दोनों भाई वे रहे और दो शिवसहाय के छाँटे—बाक़ी सब को जवाब दे दिया।...

काम तो बस वही शाम को करना होता था। पर्दे लगाना, मेज़ें सजाना, कुर्सियाँ झाड़ना और आमने-सामने खड़े हो कर टेनिस की गेंद उठाना।

लौटते लौटते आठ बज जाते। माँ तब तक चूल्हा जलाये बैठी रहती। हाथ-पैर धोकर चौके में आ बैठते, तो तवे पर रोटी डालती। बारी-बारी से एक-एक गरम-गरम रोटी खिलाती। उस वेला दोनों माँ को वही क्लब की बातें सुनाते। रोज़ माँ को समझाते कि 'टेनिस' किस तरह खेला जाता है, कहते—"बस, तैयार खड़े रहे, खड़े रहे और उधर से गेंद आई कि खेंच के वह मारा!"—माँ हँसती-हँसती सुनती।

बड़ा भाई कहता—"हमें तो बस अपने सेक्रेटरी साहब का खेल अच्छा लगता है।"

तो छोटा कहता—"वाह, सेक्रेटरी साहब से तो रोज़ गेंद गिर जाती है!"

बड़ा कहता—"कभी-कभी गिर जाती है।"

छोटा कहता—"खेलें क्या, भैंसे की तरह तो मोटे हैं!" फिर माँ की ओर हाथ उठा कर कहता—"अम्माँ, ओ अम्माँ, सेक्रेटरी साहब का पेट इतना बड़ा है—इतना!" और अपने पेट के आगे—खूब आगे तक हाथ फैला कर, गालों में हवा भर के, आँखें चढ़ा कर बैठ जाता। देख कर माँ हँसती, हँस कर कहती—"अरे रोटी तो खा ले, फिर नक़ल कर लेना!"

... ...

पूरी साल कट गई। सेक्रेटरी साहब की बड़ी दया है। उन्हीं का दिया खाते हैं; उनकी बड़ी मेहर है। दो महीने हुये, बड़े लड़के को दफ़्तर में एक जगह लगा दिया है। भगवान् करेंगे तो होते-होते किसी दिन चपरासी भी हो जायगा। सेक्रेटरी साहब राम करे जुग-जुग जियें।

अब चिल्लाई बहुत कम होती है। दफ़्तर में सब लोग कैसे रहते हैं, साहब के पास कैसे धीरे-धीरे बात करनी होती है,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैसे झुक-झुक के 'सलाम' किया जाता है—बड़ा लड़का यह सब जान गया है। छोटे भाई को सब बताता है। जब बहुत रोब में आता है तो खाट पर बैठा-बैठा छोटे से पुकार कर गौरव से कहता है—"ऐ लड़के—ऐ छोकरे! हमारे लिये एक गिलास पानी लाओ, हम पानी पियेगा!"

छोटा भाई इससे बहुत नाराज़ होता; फ़ौरन माँ से शिकायत कर देता—"देख ले अम्माँ, देख ले, भैय्या हमसे 'छोकरा' कह रहा है!"

तब माँ कहती—"अब नहीं कहेगा।"

पर बड़ा उसी समय फिर पुकारता—"छोकरे—ऐ छोकरे!"

तो छोटा भाई रूठ कर रोने-रोने को हो जाता। अन्त में माँ उसे समझाती कि—"अगर वह साहब बनता है तो तू चिढ़ता क्यों है? तू साहब का भाई है!"

तब फिर साहब और साहब का भाई दोनों बराबर-बराबर पलंग पर बैठते और घर के आँगन में, शून्य की ओर उँगलियाँ उठा कर, साथ-साथ पुकारते—"छोकरे—ऐ छोकरे!..."

... ...

असहयोग के उषा काल की बात है। देश में स्वतन्त्रता की पहिली लहर उठी थी। सरकार चकित होकर देख रही थी। बड़े शहरों में प्रतिदिन जुलूस निकल रहे थे, हड़तालें हो रही थीं, कालेज टूट रहे थे, कचहरियाँ सूनी हो रही थीं। अजीब समाँ था।

यह छोटा सा शहर। कभी भूला भटका कोई नेता आ पहुँचा तो आ पहुँचा अन्यथा वे ही कांग्रेस के बीस-तीस आदमी अपनी 'ड्यूटी' पूरी कर रहे थे। पर जनता में जोश था; लोग तैयार से बैठे थे।

अचानक ख़बर हुई कि 'अली बन्धुओं की माँ' आ रही हैं। उनके स्वागत की तैयारियाँ हुईं। स्टेशन से शहर तक का रास्ता बन्द था। हिन्दुओं के—ब्राह्मणों के लड़के उन 'देवी' की कुर्सी कन्धे पर उठा कर चले। भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"अली बन्धुओं की जय!"

"माता की जय!"

ये दोनों सड़क के किनारे एक दूकान पर खड़े थे। वहीं से सवारी देखी।

भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"भरता माता की जय!"

छोटे भाई ने स्वर बढ़ा कर कहा—"जय!"

बड़ा चुप खड़ा देखता रहा।

शाम को 'सभा' हुई। नवागता 'देवी' ने झन्डा फहराया; फिर उसके नीचे खड़े हो कर कन्या पाठशाला की पाँच लड़कियों ने हाथ जोड़ कर गाया—

'झंडा ऊँचा रहे हमारा!'

दोनों भाई एक कोने खड़े सुनते रहे।

देवी ने कहा—"इस झंडे की शान ही हमारे लिये सब से बड़ी बात है। जब तक हमारे तन में लहू रहे—ज़रा भी जान बाक़ी रहे, यह झंडा हरगिज़ न झुके..."

भीड़ चिल्लाई—"माता की जय!"

देवी ने कहा—"हम अब ग़ुलाम नहीं रहेंगे!..."

भीड़ ने कहा—"ग़ुलामी का नाश हो!"

दोनों भाई खड़े-खड़े सुनते रहे।

... ...

रात में आठ बजे सरदी से काँपते घर लौटे तो माँ बहुत नाराज़ हुई। बरोसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुलगाई, हाथ पाँव गरम करवाये। तब माँ के सामने सारा वर्णन किया। छोटे ने कहा—"अरे हमारे सामने धनपतराय वकील ने उनके पैर छुये!"

माँ ने कहा—"सो क्या हुआ, उन्होंने अपनी कोख से ऐसे रतन लड़के पैदा करे हैं। उनकी तो 'चरणरज' लेनी चाहिये!"

दोनों जने सुनते रहे।

माँ बोली—"बेटों की बदौलत आज दुनिया में उनका नाम हो रहा है—जय जयकार हो रहा है! राम करे ऐसे बेटे सब के हों; नहीं तो पेट भरना तो सभी जानते हैं।" फिर छोटे से पूछने लगी—"तूने देखा रे, उन्हें? कैसी थीं?"

छोटे ने कहा—"तेरी तरह ही थीं, गोरी-गोरी!"

"कुछ जेवर पहिने थीं?"

"कुछ नहीं—कुछ भी नहीं पहिने थीं!"

तब माँ ने कहा—"हाँ रे, उसे जेवर क्या शोभा देगा, उसके जेवर तो लड़के हैं, धन्य है उसकी कोख को।"

... ...

दो दिन बीते बड़े ने अकेला पा रात को माँ से पूछा—"अम्माँ, हम यह नौकरी छोड़ दें?"

"क्यों?"

"वे आई थीं, वे कहती थीं कि नौकरी नहीं करनी चाहिये, नौकरी गुलामी है। उनके कहने से बहुत से लोगों ने नौकरी छोड़ दी है।"

माँ ने उदास हो कर कहा—"उन सब के तो बहुत से सहारे हैं, तुम नौकरी छोड़ दोगे तो फिर कैसे गुजर होगी? वे ही पाँच रुपल्ली रह जायगा, उतने में क्या-क्या हो जायगा!"

दूसरे दिन सूरज डूबते ख़बर आई कि—महात्मा गाँधी जी गिरफ़्तार हो गये!

उसी समय कांग्रेस आफ़िस में मीटिंग हुई। निश्चय हुआ कि—कल शहर में हड़ताल होगी और शाम को सभा। पूरा जत्था सड़क पर आकर खड़ा हुआ। एक आदमी ने आगे आकर झंडा ले लिया।

दोनों भाई क्लब से लौटे आ रहे थे। यह दृश्य देखा तो वहीं रुक गये। एक आदमी ने उसी जगह 'एलान' किया—"भाइयो!"

आगे-आगे झंडा चला, पीछे-पीछे वह जत्था। यह दोनों भी साथ चले। आगे वाला कहता था—"कल क्या होगा?"।

जत्था कहता था—"हड़ताल होगी!"

यह दोनों भी जत्थे के साथ कहते—"हड़ताल होगी!"

सारे बाज़ार में चक्कर लगाया। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर 'कार्यकर्त्ता' तितर-बितर हुये, तो इन्हें भी घर की सुधि आई।..

राह में, अंधेरी गली में चलते-चलते बड़े ने छोटे से कहा—"कल की सभा में ज़रूर जायेंगे।"

छोटे ने उछलकर कहा—"हम भी!"

बड़े ने सोचकर कहा—"हम तुम कांग्रेस में खूब काम करेंगे, तो अम्माँ की बड़ाई होगी!"

छोटे ने कहा—"तभी सब जने अम्माँ की जय बोलेंगे! सब जने कहेंगे—'अम्माँ की जय!' क्यों भैय्या?"

बड़े ने कहा—"हाँ! देखो, तुम अम्माँ से अभी कुछ मत कहियो, नहीं तो हम से नाराज़ होंगी, कहोगे तो नहीं?"

"नहीं कहेंगे!"

"अच्छा, किसम खाओ!"

"तुम्हारी किसम!"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेकिन उसे याद ही नहीं रही। घर पहुँचा तो रोटी खा कर दो बार अपने पलंग पर लिहाफ़ के ऊपर उछल कर कह उठा—"अम्माँ की जय !"

सुन कर माँ ने कहा—"वाह, अम्माँ की जय बोलना किसने सिखा दिया !"

तब उसे याद आई। बड़े भाई की ओर देखकर बोला—"हम नहीं बतायेंगे—हम नहीं बतायेंगे !"

बड़े ने डर कर कहा—"अम्माँ, कल शहर में हड़ताल होगी।"

"क्यों होगी हड़ताल ?"

बीच में ही छोटे ने फिर अपने लिहाफ़ के ऊपर कूद कर कहा—"अम्माँ की जय !"

तब अम्माँ नाराज़ हुई—"चुप रह नासपीटे ! बात सुनने दे; 'अम्माँ की जय—अम्माँ की जय !' तुमने गढ़ तोड़ा है ना ! सो तुम्हारी अम्माँ की 'जय' होगी !—हाँ रे, कल हड़ताल क्यों होगी ?"

बड़े ने धीरे से कहा—"महात्मा गाँधी पकड़े गये हैं।"

... ...

सुबह को शहर में हड़ताल हुई। ऐसी हड़ताल यहाँ कभी न हुई थी। चौक में सन्नाटा हो गया। बाज़ार ख़ाली पड़ा था। हिन्दू-मुसलमान दोनों की दूकानों में ताले लटके थे। पुलिस बहुतेरा दौड़ती फिरी, लेकिन कौन सुनता है ? न धमकी से माने, न राज़ी से माने। कोतवाल घबड़ाया, कलक्टर साहब भी हैरान थे; एस० पी० शहर भर में मोटर से चक्कर लगाता फिरता था।

और अभी एक आफ़त और थी। ऊपर से सख्त हुक्म आया था कि, सभा न होने पाये !

शाम को ठीक समय पर वहीं कांग्रेस दफ़्तर के आगे जुलूस बना। यह दोनों मौजूद थे। बढ़ते-बढ़ते आगे जा पहुँचे। एक कार्यकर्त्ता झंडा लिये खड़ा था—उसके पास आ खड़े हुये। सिर ऊँचा करके हवा में लहराते तिरंगे झंडे को देखा तो बड़े ने ललचा कर कहा—"हमें दे दो, हम ले चलेंगे !"

कार्यकर्त्ता ने कहा—"नहीं !"

मन्त्री जी खड़े थे। उसका उतरा चेहरा देखा तो हँसी आ गई, कार्यकर्त्ता से कहा—"दे दो भाई, इसी को दो, कल रात यह हमारे साथ बराबर घूमा था !"

झंडा मिल गया !

मन्त्री जी ने कहा—"देखो, इसे ऊँचा और सीधा रखना,—झंडा ऊँचा रहे हमारा !"

उसने झंडा उठा दिया।

छोटे ने कूद कर कहा—"झंडा ऊँचा रहे हमारा !"

जलूस चल दिया। यह दोनों आगे थे। मन्त्री जी कहते—"महात्मा गाँधी की जय !" उसके साथ जलूस की गगन-भेदी ध्वनि होती—"महात्मा गाँधी की जय !" यह दोनों शरीर का सारा ज़ोर लगा कर 'जय' बोलते, बोलते-बोलते मुँह सुर्ख़ हो जाता, फिर बड़ी शान से आगे बढ़ते। झंडा ऊँचा उठा था।

चलते-चलते छोटे ने एक बार कहा—"भैय्या, थोड़ी देर को झंडा हमें दे दो !"

तो बड़े ने समझा दिया—"तुम से गिर पड़ेगा।"

जलूस ने ध्वनि की—"भारत माता की जय !"

इस बार छोटे के गले की नसें फूल आईं; उसे याद बनी रही। काँग्रेस का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इतना काम तो कर रहे हैं ! बड़े से कहा—"भैय्या, 'अम्माँ की जय' बोलें ?"

—उसके हाथ में झंडा है ! कह दिया—"नहीं !"

पर कहने को बहुत तबियत जो हो रही है ! चलते-चलते बड़े के कान में धीरे से कह दिया—"अम्माँ की जय !"

मुहल्ले वाली सड़क पर आये तो जानी-पहिचानी लौंडों ने उन्हें झंडा लिये आगे-आगे देखा। ताली पीट कर अपने बापों से बोले—"देखो चाचा, झंडा कौन थामे है !"

बाप लोग देख कर हँस दिये, कहा—"उन्हें और कौन काम है; अवारा हैं साले।"

पर इन्हें बड़ा गर्व था; लौंडों को देखा तो छाती फुला ली।

... ...

'कम्पनी' बाग़' के पास 'सभा' का मैदान था। वहाँ पहिले से ही पुलिस तैनात थी। सब रास्ते बन्द कर रक्खे थे। जलूस कम्पनी बाग़ में होकर आ गया।

भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"महात्मा गाँधी की जय !"

पुलिस सतर्क हो गई। भीतर सब अफ़सर खड़े देख रहे थे। कुछ आदमी आगे बढ़े कि सिपाहियों ने धक्का दिया—"हटो पीछे !"

धक्का से जत्थे का क्रम बिगड़ गया। कुछ बलिष्ठ लोग कोशिश करके सिपाहियों के सामने बढ़े। यह दोनों पीछे रह गये। धक्कामुक्की शुरू हो गई तो हट कर एक किनारी से आ खड़े हुये।

कांग्रेस के अधिकारी—मन्त्री और उपमन्त्री—सब उसी दरवाज़े पर जा डटे। पुलिस धक्का देकर, डंडा दिखा कर भीड़ को पीछे करने लगी। पर भीड़ टस से मस न हुई। आदमी से आदमी सटा खड़ा था; सिर ही सिर दीख रहे थे।

सिपाहियों ने कहा—"हटो पीछे !"

भीड़ ने चिल्लाकर कहा—"नहीं हटेंगे—नहीं हटेंगे !"

मन्त्री जी ने शान्त स्वर में कहा—"आप लोग हमें भीतर जाने दीजिये।"

सिपाहियों ने कहा—"हुकुम नहीं है !"

पीछे से भीड़ चिल्लाई—"महात्मा गांधी की जय !"—"सरकार का नाश हो !"

यह दोनों लड़के अलग खड़े थे। बड़े ने छोटे से कहा—"तुम झंडा ले लो, हम आगे जाकर देख आयें, अभी आते हैं।"

झंडा छोटे ने पकड़ा, पर झंडा बहुत नीचा हो गया; उससे बाँस उठता न था। यह तो बुरी बात हुई।

पीठ पीछे 'महारानी विक्टोरिया' की अष्टधातु की काली मूर्त्ति खड़ी थी। बड़े ने सिर घुमा कर देखा, छोटे से बोला—"अच्छा तुम इस पर चढ़ जाओ !"

वह झंडा देकर मूर्त्ति पर चढ़ने लगा; पर चढ़ न सका; मूर्त्ति बहुत ऊँची थी।

देखकर बड़े ने कहा—"अच्छा रुको, हम चढ़ाये देते हैं।" और बाहों के नीचे हाथ डाल कर उसे उठा लिया, उठा कर ऊपर चढ़ा दिया। फिर कहा—"मूर्त्ति को पकड़ लो।"

छोटे ने महारानी विक्टोरिया के गले में बाहें डाल लीं तो इधर आकर झंडा खड़ा करके उसके हाथों में थमा दिया। झंडा बहुत ऊँचा हो कर हवा में लहराने लगा !

तब नीचे खड़े होकर बड़े ने चिल्ला कर कहा—"इसी तरह पकड़े रहना !"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अच्छा।"

"गिराना मत!"

"नहीं गिरायेंगे!"

"छोड़ना मत!"

"नहीं छोड़ेंगे!"

भीड़ चिल्ला रही थी—"महात्मा गांधी की जय!"

सिपाही कह रहे थे—"हटो पीछे!"

भीड़ चिल्ला रही थी—"सरकार का नाश हो!"

बड़ा दौड़ता हुआ ब ा, भीड़ के बीच से लोगों की टाँगों में सिर दे कर घुस गया!

छोटे ने झंडे की ओर देख कर, मूर्त्ति के ऊपर खड़े-खड़े, प्रसन्न होकर गाया—"झंडा ऊँचा रहे हमारा!"

झंडा ऊँचा होकर हवा में लहरा रहा था!

—बड़ा कोशिश कर के, भीड़ में अपनी टोपी खो कर आगे आ पहुँचा और मन्त्री जी के पास आ खड़ा हुआ। सिपाही किसी को नहीं घुसने देते!

तभी किसी ने भीड़ में से चिल्ला कर, जोश दे कर कहा—"बढ़ो आगे!"

और समुद्र की लहर की तरह भीड़ बढ़ी। सिपाही धक्का खाकर एक ओर हो रहे। भीड़ बढ़ गई, बढ़ कर मैदान में घुस आई!

एस० पी० ने कहा—"अब?"

कलक्टर चुप खड़े थे।

मैदान में सिर ही सिर दीखने लगे। भीड़ ने आसमान को कँपा कर ध्वनि की—"महात्मा गाँधी की जय!"

छोटे ने वहीं से कहा—"जय!"

एस० पी० ने पूछा—"अब?"

कलक्टर ने कहा—"हाँ अब 'लाठी चार्ज' करो!"

पुलिस डंडे ले कर भीड़ पर टूटी!

लोग भागने को हुये। मन्त्री ने हाथ उठा कर चिल्ला कर कहा—"भाइयो, हटना मत! यह तुम्हारी परीक्षा है; माँ का दूध मत लजाना!"

—भीड़ जहाँ की तहाँ बैठ गई।

डंडे पड़ रहे थे!

लोगों के चोटें लगीं, ख़ून बहने लगा, सिर फूट गये!—तब भी जनता चिल्ला रही थी—"महात्मा, गाँधी की जय!"

—"सरकार का नाश हो!"

बड़े ने उछल कर कहा—"नाश हो!"

कलक्टर ने हुकुम दिया—"और मारो!"

पहिला डंडा उसी के लगा! सिर बीच से फट गया, चीख़ निकल गई,—मन्त्री जी खड़े थे, उनकी गोदी में जा गिरा!

कलक्टर ने हुकुम दिया—"और मारो!"

भीड़ चिल्ला उठी—"सरकार का नाश हो!"

अब कहाँ तक मारें! यह सब तो अचल हो गये हैं! बड़े बेहया हैं!

कलक्टर अंग्रेज़ था। यह उसकी सहन के बाहर है! बन्दूक वालों की टोली अलग खड़ी थी। क्रुद्ध होकर अब उस टोली की ओर देखा।

"सरकार का नाश हो!"

कलक्टर का मुँह लाल हो गया, बन्दूक़ वालों को हाथ के इशारे से कहा—

वन—टू—थ्री!

गोलियाँ छूटीं—

धाँय-धाँय-धाँय!

जलती आग सीने में घुस गई!

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाहाकार मच गया ! प्राणों की बाज़ी थी ! जनता भागने लगी। साहस छूट गया। कोई आश्वासन नहीं दे सका।

—धाँय-धाँय-धाँय !...

... ...

मुहल्ले के एक लड़के ने कहा—"अरे, हमने उन्हें जलूस के आगे-आगे देखा था।"

दूसरे ने कहा—"झंडा लिये थे !"

माँ के दिल में 'धुकपुकी' मच गई। हाय, वहाँ तो गोली चली है ! घिंघिया कर उन लड़कों से बोली—"भैय्या रे, मुझे तो वह जगह नहीं मालूम, चले चलो, बता दो !"

लड़के साथ हो लिये।...

मैदान ख़ाली पड़ा था। हताहत लोगों को अस्पताल पहुँचा दिया गया था। चारों ओर 'साँय-साँय' हो रही थी। अभी हाल तो 'भैरवी नृत्य' शान्त हुआ है। प्रकृति मानो वह दृश्य देख कर बहुत भयभीत हो गई है !

"यहाँ नहीं हैं।"—लड़कों ने कहा।

माँ के हृदय में आँधी चल रही है—"जाने कहाँ होंगे अभागे, मेरे पिरान ले के छोड़ेंगे।"

तब तक एक लड़के ने कहा—"अरे वह है—वह खड़ा है !"

"पट्ठा अभी तक झंडा लिये खड़ा है !"—दूसरे ने कहा।

तब माँ की भी नज़र गई। दूर पर, 'महारानी विक्टोरिया' के गले में बाहें डाले खड़ा तो है वह !

झंडा हवा में उड़ रहा है !

लड़कों ने पुकारा—"बन्नू, ओ बन्नू !"

किसी ने जवाब नहीं दिया।

लड़के बोले—"पट्ठा शान में आ गया है !"

माँ के दिल में तनिक ढाढ़स बँधा, काँपती आवाज़ में पुकारने लगी—"अब तो उतर आ अभागे ! अब कब तक यह झंडा लिये खड़ा रहेगा !"

कोई नहीं बोला।

बढ़ कर मूर्त्ति के नीचे आये।

"बन्नू—ओ बन्नू !"

"अरे हत्यारे, सुनता क्यों नहीं !"

लड़के बोले—"शान में आ गया है ! हमें चिढ़ा रहा है !"

माँ ने उससे कहा—"बेटा तू ऊपर चढ़ कर इसका झंडा छीन ले, तब उतरेगा !"

झंडा हवा में लहरा रहा है !

"बन्नू—ओ बन्नू !"

"अरे क्यों मेरा जी जला है अभागे ! देख लिया तेरा झंडा, अब नीचे उतर आ !"

कोई नहीं बोलता !

"रुको, मैं ऊपर चढ़ता हूँ।"—जो लड़का सयाना था वह मूर्त्ति पर चढ़ने लगा।

माँ देख रही है—लड़के देख रहे हैं—'महारानी विक्टोरिया' के गले में बाहें डाले बन्नू कैसा चुपचाप झंडा लिये खड़ा है ! न बोलता है न हँसता है ! बड़ा शरारती है !

झंडा हवा में उड़ रहा है !

लड़का मूर्त्ति पर चढ़ गया; हाथ से 'बन्नू' को छुआ, चिल्ला कर बोला—"अरे, इसके तो गोली लगी है !"

झंडा हवा में उड़ रहा है !

... ...

'बच्चे की माँ' छत पर बैठी थी। सामने से जलूस आ रहा था। आगे-आगे वही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तिरंगा झंडा है। झंडे की छाया में 'दोनों लालों' की छोटी-छोटी, फूल-मालाओं से लदी 'अर्थियाँ' हैं। अर्थियों के पीछे 'दोनों लालों की माँ' है। पीछे असंख्य नर-मुण्ड दीख रहे हैं!

बँगले के नीचे जलूस आया। सेक्रेटरी साहब दरवाज़े पर खड़े थे। अर्थी के पास आगे बढ़ आये। मन्त्री के कन्धे से कन्धा लगा दिया, काँप कर बोले—"मैं ले चलूँगा!"

मन्त्री पीछे हटे। 'दोनों लालों की माँ' बेजान मुर्दे की तरह सब की ओर देखती चली जा रही थी। उसकी आँखों में आँसू नहीं रहे हैं!

मन्त्री ने रुँधे कण्ठ से कहा—"अम्माँ की जय!"

असंय नरकण्ठों ने कहा—"अम्माँ की जय!"

'बच्चे की माँ' ने अञ्चल के फूल अञ्जलि में भर कर नीचे गिरा दिये—फिर और देखा नहीं गया, आँखों से धोती लगा ली और रोकर मन ही मन कह लिया—

"अम्माँ की जय!"

प्रलोभन

"आज सुबह मिस्टर चार्लस राबर्ट से मेरा परिचय हुआ; उसने तुम्हें अपना अपना नमस्ते जताने के लिये कहा है..."

जब इवाना अपने पति को चाय का प्याला आगे बढ़ा कर दे रही थी तब पति ने अख़बार पर से मुँह उठा कर इतनी बात कही।

इवाना ने उदास आँखों को उठा कर एकबार मकान के सामने की फुलवारी की ओर देखा—विचित्र रंगों के फूलों पर अस्तमान सूर्य की गुलाबी किरणों ने फैल कर एक अपूर्व इन्द्रजाल की सृष्टि की थी...

"अच्छा! क्या वह इस समय इसी शहर में है?" वह बोली।

"वह तो यहाँ बहुत दिनों से है; पर वह शहर के पूरब की तरफ़ रहता है और वह बहुत व्यस्त रहता है। कचहरी की 'बार-लाइब्रेरी' में उससे अक्सर भेंट होती है। सिर्फ़ आज बात-चीत से पता लगा कि उसका घर फ्रिसलेंड में है, और बचपन में तुम दोनों में जान-पहिचान भी थी।"

"हाँ...थी...हम लोगों का घर एक ही गाँव में था। उसका बाप गाँव का पुरोहित था। क्या राबर्ट ने शादी की है?"

"नहीं, अभीतक नहीं की है; पर उसकी शादी करने की उम्र अभी बीती नहीं है...। इस उम्र में ही वकालत में उसे काफ़ी सफलता मिल गई है।"

"वह मुझसे दो साल बड़ा है", इवाना यंत्रचालित सी कहती गई—"उसकी उम्र इस समय तीस से कम नहीं होगी!"

"हाँ, ऐसी ही होगी। अच्छा—अब मैं जा रहा हूँ,—आज रात को शायद लौट कर नहीं आ सकूँगा..."

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

... ...

"अब मैं जा रहा हूँ—रात को लौट नहीं सकूँगा..." इवाना इसी तरह की प्रेमहीन सूखी विदा-वाणी विवाहित जीवन के लम्बे दस बर्ष से सदा सुनती आ रही है...

उसके प्रति पति की यह उदासीनता अब उसे सहन हो गई थी...वह अब पति को प्रेम के झूठे अभिनयसे आकर्षित करना नहीं चाहती है...

एक रिक्त, नग्न और उदार क्लान्ति ने उसके हृदय को घेर लिया है...

... ...

वह आहिस्ते-आहिस्ते बच्चों के लिये खाने की चीजें सजा कर रखती है—अनमने भाव से...

चंचल, तेज़ गति से उसकी स्मृति भागती जाती है—दूर अतीत की ओर...

आज का यह सफल वकील राबर्ट उस समय एक बदसूरत सभ्याचार न जानने वाला एक ग्रामीण युवक था—सदा इवाना के पीछे घूमता रहता था—जब-तब अपना प्रेम प्रकट कर के इवाना को दिक् कर देता था...

इवाना अपने इस सभ्याचारहीन, अशिक्षित प्रेमी का व्यवहार देख कर हँसती थी...

'राब्' को अच्छालगने पर भी, उसे अपने पति की जगह देने की कल्पना इवाना ने कभी नहीं की थी...

इसीलिये उसके भावुक उच्छ्वास के जवाब में वह तीखी व्यंग भरी हँसी से उसे अप्रतिभ कर देती थी।...

फिर सहसा उनके जीवन में आया—एक भारी परिवर्त्तन...

रावर्ट यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिये चला गया; इवाना की शादी हो गई; किशोर-जीवन के हँसी मज़ाक से भरे दिन स्मृति के सन्दूक में संचित होकर रह गये।...

... ...

दस साल हुये, उसकी शादी हुई है; किन्तु इस लम्बी दस वर्ष की अवधि में उसने यथार्थ प्रेम का स्वाद एक दिन के लिये भी नहीं पाया...

बचपन के अनोखे चंचल दिन... उसके बीच, खेलों के साथी राबर्ट की आज उसे बार-बार याद आ रही है!

राबर्ट खेल में इवाना के निकट अपनी इच्छा से पराजय स्वीकार करके विषाद भरी आँखों से उसकी ओर देखता रहता था;—उन आँखों में व्यर्थ प्रेम की गूढ़ वेदना का अँधेरा मँड़रा उठता था।

गर्वित विजयी इवाना व्यंग भरी तीखी हँसी से उसका उत्तर देती थी!

आज इवाना ने अपनी उस हृदय-हीनता का स्मरण करके सहसा हृदय में एक कोमल भीगी वेदना अनुभव की।

बच्चों के शोर-गुल से उसकी चिन्ता के मायाजाल टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं...

कलरव करते हुये वे कमरे में प्रवेश करते हैं—

टेडी और एमा।

कोई माँ की गोद पर चढ़ बैठता है; कोई पीठ पर चढ़ कर नन्हें नन्हें हाथों से माँ की गरदन घेर लेता है...

इवाना के आनन्दहीन रूखे जीवन में स्वर्ग की कमनीयता लाते हैं ये बच्चे ...

माँ को घेर कर अपनी पुस्तकें लेकर बैठते हैं—कोई पाठ सुनाता है; कोई अर्थ पूछता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इवाना के मानस-चक्षु में अतीत का चित्र धीरे-धीरे मलीन होकर अन्त में विलुप्त हो जाता है !

... ...

जाड़े का सुबह—

शहर की चौड़ी सड़क पर प्रभात-सूर्य का मीठा प्रकाश बिखरा पड़ा है...

उस धूप की ओर पीठ करके भिखारी कातर स्वर से भीख माँग रहा है।

अख़बार बेचनेवाला चिल्ला कर विदेशी-ख़बरों की घोषणा कर रहा है।

सड़क की दोनों तरफ़ की पटरियों पर लोगों की भीड़ क्रमशः बढ़ रही है ..

एक रिश्तेदार के घर से इवाना अपने पति के साथ लौट रही है...

थोड़ी दूर आकर पति ने कहा, "यहाँ एक मुवक्किल से मेरा एक ज़रूरी काम है ! क्या अकेली घर जाने में तुम्हें कोई असुविधा होगी—?"

"बिलकुल नहीं।"

ठीक उसी क्षण सड़क के उस पार भीड़ में बढ़ते हुये एक पथिक पर इवाना की दृष्टि पड़ी।

साथ ही साथ पथिक की दृष्टि से उसकी दृष्टि टकराई; और दूसरे ही क्षण शर्मा कर इवाना ने आँखें नीची कर लीं।...

फिर जब पथिक ने सड़क पार करके इधर आकर बग़ल से चले जाते समय टोपी उतार कर सम्मान के साथ अभिवादन जताया तब इवाना ने उसकी ओर एक बार देख कर सिर झुका कर उत्तर दिया।

पथिक की गहिरी दृष्टि इवाना के हृदय के नीचे तक चली गई।...

वे विषाद भरी, वेदना से घायल, शान्त आँखें,—इवाना उन्हें अच्छी तरह जानती है !

उसके पति से दो-चार बात करके पथिक ने फिर एक बार इवाना की ओर देख कर क़दम बढ़ाया।

उसके पति ने कहा, "राबर्ट बहुत ही सज्जन है ! व्यवहार बड़ा अच्छा है।"

अनमने भाव से इवाना ने जाने क्या उत्तर दिया, कुछ समझ में नहीं आया।

"अख़बार में पढ़ा, राबर्ट एक भारी मुक़दमा लेने के लिये एमसटर्डम जा रहा है...बड़ा भाग्यवान है...अच्छा तो जा रहा हूँ..."

सड़क के एक मोड़ पर उसका पति अदृश्य हो जाता है।

इवाना अनमनी होकर चलती है—उसका सारा तन-मन तब जाने किस एक अनजान स्वप्न में मग्न हो गया था...

...अगर उससे भेंट होती तो इवाना उससे जाने कितनी बातें करती !...अपने गाँव की बातें...बचपन की बातें...उस समय के मित्र और साथियों की बातें... और भी कितनी ही बातें !

इवाना के तेज़ क़दम ढीले होते गये...

क्रमशः, गली के चौराहे पर अपने मकान की फुलवारी का छोटा फाटक दीखता है...

उसके पीछे खड़े अध-खिले 'क्रिसन-थिमम्' फूल सिर हिला रहे थे...

एकाएक, परिचित स्वर सुन कर इवाना चौंक उठती है—स्वप्न टूट जाता है !

आँखें उठा कर देखा—सामने राबर्ट खड़ा है !

इवाना के पैर से सिर तक सारी देह में एक कम्पन होता है—चेहरा लाल हो उठता है—हृदय का रक्त जम जाता है !

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने को किसी तरह सम्हाल कर कहती है, "नमस्ते ! अच्छे हो न 'राब्' ?"

इवाना उसे और किसी दूसरे नाम से सम्बोधन नहीं कर सकती है।

इवाना का दाहिना हाथ राबर्ट के दाहिने हाथ की मुट्ठी में जा मिलता है—; वह गर्म शक्तिमान हाथ इवाना के निकट कितना परिचित है !

"क्या आज भी तुम्हें 'इवा' कह कर सम्बोधन कर सकता हूँ ?" राबर्ट ने कहा।

"हाँ...कर सकते हो।" इवाना ने हृदय में एक क्षीण वेदना अनुभव की !

मुसकान की आड़ में हृदय का भाव छिपा कर राबर्ट बोला, "एक साल से इस शहर में हूँ; इतने दिनों के बाद तुम से भेंट हुई।"

इवाना ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "सो ठीक है ! पर तुम मुक़दमों और मुवक्किलों के लिये पूरब की तरफ़ रहते हो; और मैं अपनी गृहस्थी लेकर पश्चिम में रहती हूँ; इसलिये..."

हँसी-मज़ाक के भीतर से वार्त्तालाप सहज भाव से बढ़ने लगा।

इवाना बोली, "जानने हो 'राब्' ? पहिले मैं तुम्हें पहिचान ही नहीं सकी थी, तुम इतने बदल गये हो !"

राबर्ट ने इवाना के मुख पर दृष्टि रख कर कहा, "मेरे बाहर चाहे जितना भारी परिवर्त्तन हुआ हो, हृदय में आज भी कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है इवा !"

इवाना भूमि की ओर देखती रही...

उसका समस्त हृदय जाने कैसे एक अस्पष्ट आनन्द में ढँक जाता है !—विजय का आनन्द !

"आज-कल शाम को कहीं टहलने-वहलने जाती हो ?"

"हाँ; बच्चों को साथ लिये ..."

"ओह ! अच्छा ! अच्छा ! कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?"—राबर्ट के स्वर में मानों विस्मय का भाव है !

"एक लड़का और एक लड़की .." नीचे की ओर देखती हुई इवाना उत्तर देती है।

फिर दोनों चुप रह जाते हैं ...

बग्घियाँ दौड़ती चली जाती हैं। फेरी वाले अपने माल की पुकार लगाते चले जाते हैं। झुन्ड पर झुन्ड बच्चे स्कूल की ओर दौड़ते हैं...

लेकिन ये दो स्त्री और पुरुष काँपते हृदय से चुपचाप खड़े रहते हैं—उनकी दृष्टि पैर के नीचे की बर्फ़ से ढँकी भूमि की ओर लगी हुई है !

अन्त में, इवाना कहती है, "सुना, तुम विदेश जा रहे हो ?"

"अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। पहिले सोचा था—जाऊँगा। लेकिन अब...जाने का उत्साह वैसा नहीं है इवा।"

कोई उत्तर नहीं आता है ...

"तुम आज कल 'स्केटिङ्ग' करने नहीं जाती हो इवा ?"

"कभी-कभी जाती हूँ।"

स्वर में अनुरोध भर कर, राबर्ट ने कहा, "आज शाम को आओगी ? आज वहाँ भारी मेला है ! आज वहाँ आतिशबाज़ियाँ छूटेंगी; रोशनी होगी; नाच होगा। ...आओगी ?"

इवाना आँखें उठाकर देख नहीं सकती है।

पुरुष की आँखों की आह्वान-भरी उज्ज्वल दृष्टि—नारी अपने दुर्बल हृदय से इन्कार नहीं कर सकती है ...

पसोपेश के साथ उत्तर देती है, "पक्का वायदा नहीं कर सकती, मैं..."

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"क्यों नहीं इवा ?" राबर्ट ने उसके कोमल हाथ को अपने हाथ में ले लिया, "तुम क्या मुझ से डरती हो ? मुझ पर अविश्वास करती हो ?"

इवाना चुप रहती है—उसके सारे मुख पर लाली फैल जाती है...

राबर्ट ने उसके कम्पित कोमल हाथ को हौले से दबाते हुये कहा, "आ जाना, अच्छा ! आ जाना, आज शाम को मुझे निराश न करना इवा..."

और राबर्ट चला जाता है—

इवाना के हृदय पर एक दुर्लंघ्य प्रभाव छोड़ जाता है...उसका आकर्षण अरोधनीय है !

... ...

कमरे के बड़े दर्पण के सामने खड़ी होकर इवाना शृङ्गार कर रही है।

उसका उद्वेलित हृदय उत्तेजना से भर उठा है...

उसे लग रहा है—मानो उसके सामने एक नये जीवन का द्वार खुल गया है...

इतनी अवधि तक जीवन में उसने क्या पाया है ?—अनादर, अवहेलना, और कदाचित् घृणा !

वह अपने पति की गृहस्थी में एक विश्वासी नौकरानी है—उसने जीवन में इससे अधिक मर्यादा कब पाई है...? उसके जीवन में भोग नहीं है, आनन्द नहीं है, चंचलता नहीं है—है केवल नीरस और कठोर कर्त्तव्य...

इवाना दर्पण में अपनी अन्तिम-यौवन भार से अवनत सुन्दर देह की ओर एक टक देखती रहती है...

आज की शाम के लिये उसका सारा चित्त प्यासा हो उठा है...

वह आज जीवन का उपभोग करेगी...! इसमें पाप या दोष क्या है...? दोनों एकान्त में बैठकर दो बातें करेंगे; कुछ समय तक नाचेंगे...इसमें पाप या दोष क्या है ? अपराध ही क्या है ?

वह अपने इस आनन्दहीन रूखे जीवन में जरा सी कविता का मिलाव फेर लेना भर चाहती है...

अपने क्लिष्ट अस्तित्व के बीच वह क्षण भर की आनन्द-सिहरन लाना चाहती है...

ओवर-कोट पहिन कर पीठ पर पशमिना 'स्कर्फ' डाल कर इवाना फिर एक बार बालों को ठीक कर लेती है...

पउडर के 'पफ्' को फिर एक बार कपोलों पर फेर देती है...

रुमाल पर फिर एक बार सुगंध डालती है।

सहसा, आवाज़ के साथ द्वार खुल जाते हैं और चंचल क़दमों से टेडी कमरे में प्रवेश करता है—इवाना के जीवन की प्रथम स्वर्णिम-किरण !

"अम्माँ, तुम यहाँ हो ! ओ, तुम कहीं जा रही हो ?"

"हाँ, टेडी !"

इवाना एक-टक उसे देखती है—कितना सरल, उज्ज्वल सौन्दर्य बालक के चेहरे पर है !

"क्या तुम अब तक खेल रहे थे ?"

"हाँ अम्माँ।—जानती हो अम्माँ—आज फिर सब लड़के हैरी को बना रहे थे;—हैरी को तो तुम जानती हो; अरे उस मुहल्ले में रहता है..."

हाँ, इवाना उसे जानती है। उसकी माँ को भी वह जानती थी—साल भर हुआ वह अपने पति और पुत्र को छोड़ कर एक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपरिचित के साथ जाने कहाँ चली गई है !

टेडी कहता है, "आज फिर वे हैरी को उसकी माँ को बदनाम करके बना रहे थे..."

"वे सब लड़के नटखट हैं, तुम उनसे न खेलो !"—इवाना का स्वर काँप जाता है !

"पर वे तो मुझे कुछ भी नहीं कहते हैं, अम्माँ। तुम उनको खाने के लिये चटनी देती हो इस लिये—वे तुमको प्यार करते हैं !"

सहसा इवाना पुत्र को छाती में खींच लेती है—चुम्बनों से उसका मुख भर देती है।

क्षण भर के बाद टेटी बोला, "तुम कहाँ जाओगी अम्माँ ?"

"कहीं नहीं जाऊँगी, बेटा,"—इवाना अपनी देह से ओवर-कोट उतार लेती है; उसका चेहरा सफ़ेद हो गया है; पतले दोनों ओंठ एक दूसरे में आबद्ध होकर जाने क्या एक पक्का विचार प्रकट कर रहे हैं।

हृदय में एक दारुण संग्राम समाप्त हो जाकर धीरे-धीरे उसकी सारी देह में एक स्निग्ध क्लान्ति फैल जाती है !

टेडी प्रफुल्लित होकर कहता है, "कहीं नहीं जाओगी ? ओह, तब तो बड़ा अच्छा है ! तो अम्माँ, कल की उस राजकुमारी का क़िस्सा आज रात को ख़तम करना ही पड़ेगा ! मैं एमा को बुला लाता हूँ; अभी सुनाओगी ? बहुत बड़ा क़िस्सा है न !"

इवाना सोफ़ा पर बैठ कर कहती है, "जाओ बेटा; एमा को बुला लाओ..."

चंचल बालक क्षण भर में कमरे से बाहर निकल जाता है...

इवाना उसके तेज़, चंचल क़दमों की ओर मुग्ध नयनों से देखती है...

एक अकथनीय आत्म-तृप्ति की चमक से उसका सारा चेहरा उज्ज्वल हो उठता है।

—नरविजियन लेखिका,—जोहाना वूड।

कीड़ा

स्वप्न में देखा कि मानो हम बीस मनुष्यएक बहुत बड़े कमरे में बैठे हैं, खिड़कियाँ सब खुली हैं।

हम लोगों में बच्चे, स्त्री और बूढ़े भी थे।

हम लोग एक परिचित विषय पर आलोचना कर रहे थे—ज़ोरों से किन्तु अस्पष्ट भाव से।

सहसा कमरे में पंखों से 'भन् भन्' आवाज़ करता दो इंच लम्बा एक कीड़ा उड़ता हुआ घुसा। कमरे के चारो तरफ़ दो तीन बार चक्कर काट कर दीवार पर चुप-चाप बैठ गया।

वह कीड़ा देखने में मक्खी या बर्रे की तरह था। उसका रंग मटियाला था, उसके चपटे पंख भी उसी रंग के थे; उसके नाखून हाथ के पंखे की तरह फैले हुये थे, उसका सिर नुकीला पर मोटा था; उसके नाखून और सिर चमकीले लाल रंग के थे, मानो ख़ून से भीगे हुये हों।

यह अद्भुत कीड़ा अपना सिर बार-बार कभी नीचे की ओर कभी ऊपर की ओर,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कभी दाहिने कभी बायें घुमाने लगा; फिर उसने कुछ क्षणों तक अपने नाखूनों को हिलाया; फिर वह सहसा दीवार छोड़ कर पंखों से 'भन् भन्' आवाज़ करता हुआ कमरे में उड़ने लगा। वह फिर एक जगह बैठ गया। अपनी जगह से न हट कर वह इस तरह अपनी सारी देह को हिलाने लगा जिससे मन में घृणा और विरक्ति आ जाती है।

इस कीड़े ने हम सबको बेहद डरा दिया। हम लोगों में से किसी ने भी ऐसा अद्भुत कीड़ा कभी भी नहीं देखा था। हम लोग चिल्ला पड़े—"यहाँ से भगाओ इस भयानक कीड़े को!"

हम सब दूर से अपना-अपना रूमाल उसकी ओर हिलाने लगे, पर किसी ने भी उसके निकट जाने का साहस नहीं किया।... जब वह कीड़ा उड़ने लगा, सब अपने-आप उसके सामने से हट जाने लगे। केवल हमारे दल का एक पीला चेहरे वाला युवक, गहिरी विस्मय भरी दृष्टि से एक टक हम लोगों की ओर देखता रहा। उसने अपनी गरदन हिलाई, फिर मुसकराया, वह ठीक समझ नहीं सका कि क्या हुआ है, और क्यों हम लोग इतने उत्तेजित हो पड़े हैं। उसने कीड़े को बिलकुल देखा ही नहीं था, उसके पंखों के अशुभ शब्द भी उसने नहीं सुना था।

सहसा लगा कि वह कीड़ा मानो उसकी ओर एक टक देख रहा है। फिर एकाएक उड़कर उसके सिर पर जा गिरा और उसकी आँखों के ज़रा ऊपर माथे पर डंक मार दिया।

युवक एक क्षीण आर्त्तनाद करके भूमि पर लुढ़क पड़ा। धीरे-धीरे उसकी अन्तिम साँस उसके अन्तर-प्रदेश से उठ कर वायु में विलीन हो गई।

और साथ ही साथ वह भयंकर कीड़ा कमरे से उड़ कर बाहर चला गया।... तब हम लोग समझ सके कि कौन आया था!

—रूसी लेखक, इवान तुर्गेनेफ़।

चम्पा

(श्री द्विजेन्द्र नाथ मिश्र)

बहुत दिन पहिले की घटना है। पहाड़ों की तलहटी में एक छोटा सा राज्य था। राज्य में जो कुछ होता है, सब था लेकिन बहुत छोटे पैमाने का। राजा थे, राजा की रानी भी थी; महल था, सेना थी, दरबारी भी थे। नहीं था तो बस एक युवराज। राजा के पुत्र नहीं था; एक पुत्री थी, उसके बाद फिर कोई सन्तान पैदा नहीं हुई।

राजा की बेटी का नाम था चम्पा-रानी। रानी को चम्पा के फूलों से बड़ा प्रेम था। महल में, महल के आस पास बाग़-बग़ीचों में चम्पा के पौधे लगे थे, उन पर असंख्य फूल खिलते, फूलों की गन्ध से हवा भर उठती, रानी का हृदय विह्वल हो जाता।

इसी से जब कन्या का जन्म हुआ, राजा ने उसका नाम रक्खा चम्पारानी। रानी को बहुत प्रिय लगा।

चम्पारानी के जन्म दिवस पर राज्य में बड़ा भारी उत्सव होता था। उस दिन लोग 'चम्पा के फूलों' से भरी डालियाँ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजकुमारी को भेंट करते। राजा की आज्ञा थी।

इन जन्म दिवसों के साथ-साथ चम्पा रानी की अवस्था बढ़ती गई, अवस्था के साथ सौन्दर्य बढ़ा, सौन्दर्य के साथ 'रूप-श्री' बढ़ी।

कल तक वह छोटी बच्ची थी—आज किशोरी हो गई थी। फिर क्रमशः उषा काल की पद्म कलिका के समान नवयौवन की लालिमा मुख पर खिल उठने लगी।

(२)

यह सोलहवाँ जन्म दिवस था। खुले दरबार में राजा-रानी के बीच राजकुमारी चम्पा शुभ्र वस्त्र परिधान किये माँ अन्नपूर्णा की तरह सिंहासन पर बैठी थी।

नीचे चाँदी की छोटी सी चौकी धरी थी, चौकी पर राजकुमारी के रक्त कमल से छोटे-छोटे दोनों चरण विराजमान थे। छोटे दर्जे के लोग इन्हीं चरणों पर अपनी भेंट चढ़ा रहे थे। राजा की आज्ञा थी।

स्वच्छ सरोवर में सहस्रदल के समान, गोदी में दोनों सुकुमार हाथ रक्खे राज कुमारी बैठी थी। जब कोई प्रजाजन आकर भेंट चढ़ाता, वह उसकी ओर देखकर मुस-करा देती। राज्य के बड़े लोग इन्हीं, यज्ञ की धूप के समान पावन, देवता के प्रसाद के समान अप्राप्य, करकमलों में अपनी भेंट धर देते थे। राजा की आज्ञा थी।

शरद्ऋतु के पूर्ण चन्द्र सा राज कमारी का अनिन्द्य आनन था—उसकी छवि अवर्णनीय थी। उस मुख की ओर किसी को दृष्टि जमा कर देखने का साहस नहीं होता था—राजा की बेटी, राजकुमारी चम्पा-रानी! उसका सौन्दर्य स्वर्गिक है, किसी साधारण जन की दृष्टि पड़ने पर कलुषित हो सकता है।

शंख के समान चम्पा की ग्रीवा थी। ग्रीवा में 'चम्पा के फूलों' के हार झूल रहे थे। हार राज्य के उच्च कर्मचारी पहिना रहे थे। राजा की आज्ञा थी। राजकुमारी छोटे-बड़े सब की भेंट-पूजा सिर झुका कर, लाल ओठों से तनिक सा मुसकराकर, स्वीकार कर रही थी।...

इसी समय एक अजीब बात हुई। पूजा करने वालों के बीच से एक युवा आगे बढ़ कर आया। वह 'पूजा की माला' हाथ में लिये राजकुमारी के सामने आ खड़ा हुआ; और राजकुमारी के मुख को देखने लगा। राजा और रानी चौंके। मन्त्री घबड़ा उठा। राजकुमारी के ओठों की हँसी रुक गई।

मन्त्री दौड़ कर पास आये, कहा—"चढ़ाओ-चढ़ाओ!" युवा आगे बढ़ा, लेकिन यह क्या! - वह अपनी 'माला' राजकुमारी के हाथों में धरने लगा। राजा-रानी चौंके। मन्त्री घबड़ा उठा। राजकुमारी की हँसी रुक गई।

मन्त्री ने रोक कर कहा—"तुम बड़े असभ्य हो!" फिर इशारे से कहा—"चरणों में—"

पर निर्भीक युवा ने उधर कान न दिया, उसने अपनी माला सचमुच ही राजकुमारी के कर-कमलों पर धर दी। बहुत बड़ी गड़बड़ हुई! राजा की हुक्म उदूली! मन्त्री ने क्रुद्ध होकर पूछा—"तुम कौन हो जी?"

माला राज कुमारी के हाथों में धरी रही।

युवा ने कहा—"मैं परदेशी हूँ; यहाँ से कई सौ मील दूर मेरा गाँव है। वहाँ के राजा का मैं एक नौकर हूँ। देशाटन करने निकला हूँ।"

फिर उसने संक्षेप में अपने राजा के रीति-रिवाज बतला कर कहा—"हमारे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहाँ राजा की पूजा-माला अपने हाथ की बनी चीज़ होती है। सुनार सोने की माला बनाता है—लुहार लोहे की—बढ़ई काठ के फूलों की —।"

सब को बड़ा अचम्भा हुआ।

युवा ने कहा—"और सब लोग अपनी मालायें राजा के गले में ही डालते हैं, चाहे छोटा हो—चाहे बड़ा।"

सब लोग सुनते रहे।

और उसने कहा—"मेरी यह माला मेरे हाथ की बनी है, अपने हाथ से ये फूल मैंने बनाये हैं, अपने हाथ से उन्हें सुवासित करके गूँथा है!—"

सब लोग अवाक रह गये, फूल हाथ से बनाये हैं!

राजा ने हाथ बढ़ा कर माला उठा ली, रानी झुक कर देखने लगीं। मन्त्री ताकते रहे।

सचमुच—सचमुच, ये फूल कपड़े के हैं। लेकिन कैसे बनाया है इन्हें? बहुत कला पूर्ण हैं!

राजा ने माला राजकुमारी के हाथों में लौटा दी और युवा की ओर देख कर बोले—"मालाकार, हम तुम्हारी इस भेंट से बहुत प्रसन्न हुये हैं।"

फिर खजान्ची की ओर देख कर हुक्म दिया—"इन्हें पारितोषिक दो!"—युवा ने अभिवादन किया।

राजकुमारी ने 'माला' उठा कर अपने हाथों से ग्रीवा में पहिन ली। देख कर युवा मुसकरा उठा। राजकुमारी के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गई।

(३)

गोधूलि बेला थी। राजा के महल की अटारी को छूकर सूर्य नीचे खिसक गया था। महल के पिछवाड़े राजा का सुन्दर उद्यान था, उद्यान में अनेक तरह के फल-फूलों के वृक्ष थे, लतायें थीं—कुञ्ज थे।

उद्यान शान्त हो रहा था और ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर सुनहली किरणों का जाल फैला था। धीमी हवा बह रही थी, हवा से सद्यः-विकसित कलियाँ झूम रही थीं।

ऐसे सुहावने समय में राजकुमारी घूमने आई थी। घूमती-घूमती उद्यान की चहार दीवारी के पास आ पहुँची। राजकुमारी खड़ी रह कर किनारे से निकलते प्रजाजनों को देख रही थी कि ऊपर से एक फूल चूकर उसके पैरों के पास आ गिरा। राजकुमारी ने उठाकर सूँघा—कैसी मोहक गन्ध है! चम्पा का फूल है न!

गले में वही 'मालाकार' की माला पड़ी थी। राजकुमारी को जाने क्या ध्यान आया, माला को ऊपर कर के सूँघने लगी। लेकिन कुछ नहीं—कोई गन्ध नहीं!—गन्ध जाने कैसे उड़ गई! और मालाकार के हाथ के बनाये फूलों का रंग भी चला गया था! तब राजकुमारी ने माला गले से निकाल ली।

उसी समय देखा, सामने राजपथ पर युवा मालाकर चला जा रहा है।

राजकुमारी के मुँह से अनायास पुकार निकल गई—"मालाकार!"

मालाकार आया, अभिवादन करके चहार दीवारी के उस पार राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया।

राजकुमारी ने कहा—"तुम्हारी माला की सुरभि तो उड़ गई, मालाकार! तुम्हारी माला के फूल ये काले क्यों पड़ गये?"

युवा ने कहा—"राजकुमारी, हाथ की बनी माला और कब तक स्थिर रहती!—आप की वाटिका के पुष्प तो एक दिन में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही सूख जाते हैं; मेरी माला और कब तक नवीन रहती ?"

फिर वह राजकुमारी के चन्द्रानन पर दृष्टि स्थिर करके मुसकराने लगा। राजकुमारी ने लाज से पलक गिरा लिये और धीरे से कहा—"एक और माला मुझे दोगे ?"

"वैसी माला तो और मेरे पास नहीं है राजकुमारी, वैसी माला मैं यहाँ बना भी नहीं सकता; एक और माला मेरे पास है, आज्ञा हो तो उसे भेंट करूँ—"युवा ने कहा।

राजकुमारी ने कौतूहल में भर कर पूछा—"वह माला कैसी है मालाकार, उसे तुमने किस चीज़ से बनाया है, क्या मोतियों से ?"

"मोतियों से !—हाँ मोतियों से बनाया है राजकुमारी, पर वे मोती सागर के नहीं हैं, वे मोती मेरे हृदय-सीप के हैं—वे बहुत वैसे मोती हैं ! लोगी राजकुमारी ? —तुम यह माला स्वीकार कर सकोगी ?"

राजकुमारी ने सिर से पाँव तक काँप कर अपना मुख नत कर लिया; कुछ भी नहीं कह सकी।

(४)

चम्पारानी के शयन कक्ष में दक्षिण ओर एक खिड़की है। खिड़की के नीचे कदम्ब का वृक्ष है, उसकी सुन्दर डालें खिड़की पर झुक आई हैं, मानो झाँक कर भीतर का दृश्य देखना चाहती हैं।

खिड़की खोल कर राजकुमारी अपनी कोमल शैय्या पर लेटी थी। शुक्लपक्ष की रात्रि थी, चन्दा उग आया था, उसकी एक भूली भटकी रश्मि कदम्ब के डालियों से उलझ कर यहाँ भीतर आ पड़ी थी।

राजकुमारी लेटी-लेटी सोच रही थी—युवा मालाकार की बातें—उत्सव के दिन का दृश्य—चहारदीवारी के पार, 'लोगी राजकुमारी ? तुम यह माला स्वीकार करोगी ?'

राजकुमारी दुग्ध धवल शैय्या पर लेटी-लेटी अपने आप से कहने लगी—'वे मोती मेरे हृदय-सीप हैं—वे बहुत वैसे मोती हैं !'

कदम्ब की डाल पर से ध्वनि आई—"हाँ राजकुमारी मेरे हृदय-सीप के मोती—"

राजकुमारी तड़ितवेग से उठ बैठी, खिड़की पर मुख रख कर पुकारा—"कौन ? मालाकार ?"

कदम्ब की डाल पर से ध्वनि आई—"हाँ, राजकुमारी !"

"तुम यहाँ आये हो ?—इस वेला ?"

"हाँ, राजकुमारी !"

"क्यों तुम आये हो मालाकार ?"

"माला अर्पण करने राजकुमारी !"

—राजकुमारी मौन हो गई।

"राजकुमारी !"

"हाँ, मालाकार !"

"यह माला स्वीकार करोगी ?"

—राजकुमारी मौन हो गई। महल के सिंहद्वार पर प्रहरी पुकार उठा; घड़ियाल ने प्रहर बीत जाने का समयघोष किया। फिर निस्तब्धता छा गई।

तब राजकुमारी ने धीमे स्वर में कहा—"मालाकार, तुम जाओ।"

"परन्तु माला—?"—कदम्ब से ध्वनि आई।

"माला !—" राजकुमारी ने खिड़की पर झुक कर कहा—"फिर कहूँगी।"

(५)

वही कदम्ब की डाल—वही खिड़की। युवा मालाकार की रोज़ ही राजकुमारी से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भेंट होती; रोज़ ही बातें होती—कितनी ही मधुर बातें होती !...

युवा मालाकार ने कहा—"अब तो माला स्वीकार कर लो राजकुमारी !"

—राजकुमारी नित्य की तरह मौन हो गई।

युवा कहने लगा—"आज मैं निर्णय चाहता हूँ। यदि मेरी माला अस्वीकार हो तो सूर्य्योदय से पूर्व ही यह राज्य छोड़ कर चला जाना चाहता हूँ। अब मुझसे प्रतीक्षा नहीं होती।"

"कहाँ चले जाओगे ?—राजकुमारी ने दुख-भरे स्वर में पूछा।

"अपने देश लौट जाऊँगा। मेरा देश ! वहाँ कितना सुख-शान्ति है ; कितना आनन्द-उच्छ्वास है ! बहुत दिन छोड़े हो गये।"

राजकुमारी ने हौले से कहा—"मालाकार !"

"हाँ राजकुमारी !"

"तुम्हारी माला का मूल्य बहुत है मालाकार, जानते हो ! उसके बदले में मुझे अपना सर्वस्व देना होगा !"

"राजकुमारी !"—मालाकार ने करुणा-विनती से कहा—"क्या मैं इस योग्य नहीं समझा गया हूँ ?"

"मालाकार, मेरे पिता 'राजा' हैं ; मैं राजा की बेटी हूँ; तुम्हें सर्वस्व देकर 'राजा' का अपमान करूँगी। पिता को 'पीड़ा' दे कर 'सुख' नहीं पा सकूँगी, मालाकार !"

—मालाकार चुप हो गया।

तब राजकुमारी हौले से, बहुत ही अस्पष्ट शब्दों में कह उठी—"यदि तुम भी राजकुमार होते—!"

मालाकार ने सुन लिया; उसने कहा—"राजकुमारी, मैं यह बात जानता था, पर मैंने सोचा था कि अभी तुम से वह 'रहस्य' न कहूँ, मैं पीछे से सब सुना कर तुम्हें 'सुखित' करना चाहता था। राजकुमारी, माला तो मेरी तुम ने अस्वीकार नहीं की है; पिता के अपमान की आशङ्का भी अब मत करो। अब मैं छिपाऊँगा नहीं, तुम 'सुखित' होओ राजकुमारी, मैं 'मालाकार' नहीं—राजकुमार हूँ !"

"राजकुमार !"—चम्पारानी ने चौंक कर कहा।

"हाँ, राजकुमारी, राजकुमार—मैं अपने छोटे-से राज्य का 'राजा' हूँ। वेष बदलकर, तुम्हारी 'पूजा' करने—'प्रसाद' पाने की इच्छा से आया था।"

राजकुमारी उठकर बैठ गई, स्नेह-भरे कण्ठ से बोली—"तब तुम मेरी परीक्षा लेने आये थे राजा ?"

राजकुमार ने उसी तरह उत्तर दिया—"नहीं राजकुमारी, मैं सचमुच तुम्हें 'अर्घ्य' देने आया था।"

पर राजकुमारी ने उधर ध्यान ही न दिया। विद्रुम जैसे लाल ओठों से तनिक-सा मुसकरा कर, ग्रीवा टेढ़ी कर के कह दिया—"छलिया !"

(६)

"इतनी दूर मैं कैसे चल पाऊँगी ?"
"मेरे पास घोड़ा है।"
"धूप से देही झुलस जायगी !"
"मैं छाया किये रहूँगा।"
"राह में प्यास से गला सूख जायगा !"
"मैं पानी तलाश कर लाऊँगा।"
"तन पर धूल छा जायगी !"
"मैं अपनी पगड़ी से पोंछ दूँगा।"
"रात पड़ जायगी तो कहाँ सोऊँगी ?"
"मेरी गोदी में सो जाना।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"जङ्गल में सिंह-हाथी होंगे !"

"मेरे पास शस्त्र है।"

अब कोई बात नहीं रही, फिर भी राजकुमारी ने कहा—"राजा, अभी कुछ दिन यहीं रहो न ! शरद् ऋतु आने पर तुम्हारे राज्य में चलेंगे।"

"नहीं राजकुमारी",—राजकुमार ने कहा—"अब और नहीं रहा जा सकता; राज्य में अव्यवस्था हो रही होगी।"

—राजकुमारी मौन हो रही।

राजकमार ने विनती से कहा—"राजकमारी !"

"हाँ, राजा !"

"चलोगी न ?"

"चलूंगी राजा !"

... ...

—बहुत दूरी थी। पर इतनी लम्बी राह खेल-खेल में ही कट गई। राजकुमारी को कष्ट का पता नहीं लगा। दिन भर चलते, रात को किसी जगह एक दूसरे की गोदी में सिर रख कर सो रहते; भूख लगती तो फल तोड़ कर खा लेते, प्यास लगती तो नदी-नाले का जल पी लेते। बहुत दिन लग गये, तब कहीं जा कर अपने राज्य की सीमा आई। राजकुमार .खुश था; राजकुमारी और भी अधिक .खुश थी।

(७)

यह राज्य उससे भी छोटा था। कुछ चीजें थी, कुछ नहीं थीं। राजा का प्रबन्ध जाने कैसा था, प्रजा जाने कैसी थी, सब ओर 'हाय, तोबा' सी मची रहती। दिन-दहाड़े चोरी हो जाती, डाके पड़ जाते; राजा को पता ही नहीं चलता। राज्य कर्मचारी अन्याय से 'कर' बसूल करते, सेनापति सताता, कोई उन्हें रोकनेवाला नहीं था। राजा बेखबर थे।

राजा की अवस्था थोड़ी है। वह बहुत रूपवान् है, पर बुद्धि वैसी नहीं है; देखने पर 'देवता' सा लगता है; पर मन वैसा नहीं है। उसकी प्रकृति अजीब है। उसे राज्य की चिन्ता नहीं—प्रजा की फिक्र नहीं। वह केवल अपने राग-रंग में मस्त रहता है—शिकार खेलता है। दूर-दूर से सुन्दर से सुन्दर नव युवतियों की तलाश कर के महल की शोभा बढ़ाता है। उसकी बहुत सी रानियाँ हैं—सब सुन्दरी हैं, सब अनुपम हैं !...

राजकुमारी चम्पा यह कुछ नहीं जानती। वह बहुत .खुश थी। उसे राजा ने अपने हृदय-सीप के मोतियों की माला जो दी है !—साधारण बात नहीं है। राजकुमारी का सर्वस्व उसी माला के बदले बिक गया है। फिर भी वह .खुश थी।

महल के ऊपरी भाग में एक सुन्दर सी श्वेत संगमरमर की अट्टालिका थी। उस अट्टालिका में प्रधान 'रानी' रहती है।

अब तक जो रहती थी उस के लिये राजा की आज्ञा हुई है—वह नीचे के महल में आ जाय ! नीचे—जहाँ बहुत सी और रानियाँ इसी तरह एक-एक कर के ऊपर से उतर कर आ गई हैं !

प्रधान रानी ने अपनी भ्रकुटि चढ़ा कर पूछा—"क्यों ?"

संदेश बाहिका ने कहा—"तुम्हारी यहाँ रहने की अवधि पूर्ण हो चुकी है; अब यहाँ नई 'महारानी' रहेंगी।"

राजकुमारी चम्पा को कुछ नहीं मालूम। वह संगमरमर की शुभ अट्टालिका में आ रही। ओह ! कितना सुख है !—चारो ओर श्वेत—श्वेत !

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजा थोड़ी-थोड़ी देर बाद आते, आ कर पूछ जाते—"कुछ कष्ट तो नहीं है ?"

राजकुमारी सुख में डूब कर कहती—"नहीं राजा !"

रात को राजा यहीं रहते। चन्द्रमा की ज्योत्स्ना छिटकी रहती, तारे टिमटिमाते रहते, राजकुमारी चम्पा राजा के वक्षस्थल पर सिर रक्खे उन से दुनिया के सुख-सन्तोष की बातें सुनती, सुनकर आश्चर्य से कहती—"अच्छा !"

और रात कट जाती।

(८)

यहाँ भी उद्यान था। पर उसमें चम्पा के पेड़ नहीं थे। जाने किस देश से वे फूल-पौधे लाकर लगाये गये थे; उन पर तरह-तरह के सुन्दर फूल खिलते—फूलों से उद्यान आलोकित हो उठता; पर उन फूलों में सुगन्ध नहीं आती—जाने कैसे फूल थे !

सूर्य्यास्त के बाद—राजा के आने की बात थी। राजकुमारी का राजा के बिना जी नहीं लगता। अपनी 'अटारी' से उतर आकर उद्यान में घूमने चली आई थी। फूलों पर मुख रख-रख के सूँघती फिरती थी—हाय, किसी में खुशबू नहीं, ये ऐसे पौधे राजा ने क्यों पसन्द किये हैं ? चम्पा का एक भी पेड़ नहीं। राजकुमारी ने मन ही मन सोचा—आज जब राजा आयेंगे तो वह उनसे चम्पा के पेड़ के लिये कहेगी। वह अपने हाथ से इस उद्यान में चम्पा का पेड़ लगायेगी; जब उस पर फूल खिलेंगे तो माला गूँथ कर राजा को पहिनायेगी।

—कि पास के घने कुंज में, ऐसा लगा कि, कोई धीरे-धीरे बोल रहा है। राजकुमारी कान लगा कर सुनने लगी—

जाने किसने कहा—"उसे ब्याह कर लाये हो ?"

"नहीं रानी !"—किसी ने उत्तर दिया।

—अरे, यह तो राजा का स्वर है !

"तो मेरे लिये 'सौत' लाये हो ?"

"नहीं रानी !"

—अरे, यह क्या उसी के लिये कहा जा रहा है ?

"फिर वह कौन है ?"

"वह—"—राजा ने कहा—"वह कोई नहीं, वह एक ग़रीब की लड़की है; अनाथ थी, इसी से मैं उसे लेता आया हूँ।"

—ऐं !

राजा ने और कहा—"रानी, तुम नाराज़ मत होओ, वह तो केवल तुम्हारे लिये लाया हूँ। तुम्हारे लिये एक सुन्दर सी दासी चाहिये थी न !—वह तुम्हारी सेविका है रानी, वह तुम्हारे बच्चे को खिलाया करेगी, न रानी ?"

राजकुमारी चम्पा के होश उड़ गये। अब और उससे सुना नहीं गया। भाग आई।

(९)

रात को राजा आये। पर राजकुमारी ने उनसे एक शब्द भी नहीं कहा।

राजा ने पूछा—"तुम्हारा जी अच्छा नहीं है क्या ?"

"हाँ।"—राजकुमारी ने बड़ी कठिनता से कहा।

"तो सो जाओ।"

राजा को नींद आ गई। राजकुमारी जगती रही। हाय, अब वह क्या करे ?

... ...

बाज़ार में एक किनारे से 'विष' की दूकान थी। राजकुमारी उसी दूकान के आगे आ खड़ी हुई।

और अपनी नाक का 'बेसर' उतार कर दूकानदार के आगे रख दिया, फिर करुण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भरी बिनती से कहा—"दूकानदार भैय्या, तुम हमें इस बेसर का विष दे दो !"

"विष !"—बनिये ने कहा—"विष का क्या करोगी बेटी !"

राजकुमारी ने हौले से कहा—"भैया, मुझे जरूरत है।"

तब बनिये ने कहा—"बेसर का विष नहीं मिलता; विष पैसों से बिकता है।"

अब क्या हो ?—राजकुमारी की आँखों से आँसू बहने लगे, रोने लगी !

बनिये को दया आ गई; राजकुमारी के मुरझाये कमल के समान मुख की ओर देख कर उसने बेसर के मूल्य का बिष दे दिया।

(१०)

राजकुमारी ने स्वर्णपात्र में वह विष घोला; घोल कर पी गई !—

और कोई उपाय नहीं था। वह 'राजा की बेटी' थी। वह अपमान नहीं सह सकती थी; न वह अपने 'पिता' को कलंकित कर सकती थी; न वह राजा से लड़ सकती थी। और कोई उपाय नहीं था।

राज कुमारी ने स्वर्णपात्र में वह विष घोला; घोल कर पी गई !—

... ...

रात को राजा आये। राजकुमारी दुग्ध धवल शैय्या पर स्वच्छ परिधान पहिने सो रही थी। सब निष्कलंक !

राजा ने पास बैठ कर प्यार से पुकारा —"रानी !"

उत्तर नहीं आया।

"रानी ! चम्पा रानी !"

उत्तर नहीं आया।

"रानी ! अरे, आज तुम्हें बड़ी गहरी नींद आई है !" उत्तर नहीं आया।

राजा को संशय हुआ। झुककर देखा, स्पर्श किया, हिलाया-डुलाया। सब शान्त है—सब शान्त है।

(११)

थोड़े दिनों बाद राजकुमारी के पिता ने सेना लेकर चढ़ाई की। युवा राजा की सेना अव्यवस्थित थी, सेनापति मद में था। राजा हार गये। राजकुमारी के पिता ने राजा को पकड़ लिया था; वे उसका 'सिर' काट ले गये। राज्य लूट लिया।

... ...

यह बहुत दिन पहिले की कथा है। तब से जाने कितने परिवर्त्तन हो चुके हैं। पर राजकुमारी चम्पा रानी की वह 'करुण कथा' राज्य में उसी तरह गूँज रही है।...

प्रति वर्ष जब वर्षा-ऋतु आती है। आकाश मेघाच्छन्न हो उठता है, चन्दा-तारे छिप जाते हैं, तो राज्य भर में, घर-घर हिंडोला डालकर, बालों में 'चम्पा' के फूल लगाकर लड़कियाँ झूला झूलती हैं और 'राजा की बेटी' की करुणाभरी कहानी गाती जाती हैं।

उस कहानी को सुनकर बादल गरजते हैं, आसमान रोता है, पवन काँपता है और वसुधा प्लावित हो उठती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऊपर का कमरा

(श्री लक्ष्मण सहाय माथुर)

दरवाज़े पर काली छाया लटक रही थी और दरवाज़ा स्वयं काला सा था। चन्द्राकार ऊपरी भाग ऐसा अन्धकार युक्त था मानो किसी क्रोधित दैत्य की विशाल भौंह हों। ज़ीना चौड़ा था और लकड़ी का बना था। एक ओर उसके हाथ टेकने को रेलिंग थी। सीढ़ियाँ झुकती, चक्कर खातीं, नीचे दूसरे दरवाज़ों के सामने से निकली हुईं, आँगन में से होकर बाहर गली में ख़तम हो जाती थीं। दूसरे दरवाज़े भी काले थे, पर उनमें फ़र्क़ था। सब से ऊपर वाला तो बिलकुल रोशनी में था, रोशनदान के कारण—और शायद इसी लिये यह दरवाज़ा प्रकाश के बाद अन्धकार में होने के कारण—इतना काला और भयावह मालूम पड़ता था। नीचे के दरवाज़े खुलते थे, बन्द होते थे; भड़भड़ा कर बन्द किये जाते थे और मुँह बा कर खुलते भी थे। स्त्री-पुरुष बाहर-भीतर उनमें से आते-जाते थे, बातचीत और मनुष्यों का कोलाहल सुनाई देता था, कभी-कभी हँसी और किसी गाने की एक आध लाइन भी आती थी, पर यह ऊपर का दरवाज़ा हफ़्तों और महीनों बन्द रहता था। और सच बात तो यह थी कि 'लोगमाँ' का नाम बुरा पड़ गया था और सालों से ख़ाली था। उस कमरे के अन्तिम किरायेदार से भी बहुत पहिले ही से लोग उस कमरे को भय और आंशका से देखते थे। और उस अन्तिम किरायेदार की मृत्यु ने तो किसी भाँति भी उस कमरे की मनहूसियत दूर नहीं की थी।

पूरा मकान इतना पुराना था कि शायद उसकी दीवारों ने सेंट बार्थोलोम्यू का रक्त काँड भी देखा होगा और शायद उसी अशुभ दिन के कारण ही उस कमरे की बदनामी भी शुरू हुई थी। पर सारे पेरिस का इतिहास क्रूरता से पूर्ण है और यह मकान राज्य के किसी उच्च सरदार का था इसलिये सारी शताब्दियों का कोई भी साल उस कमरे पर मृत्यु की छाप लगा सकता था। जिसके कारण अब तक वहाँ भय तथा दुर्भाग्य का राज्य था। ठीक कारण तो किसी को याद नहीं पर बात सच ज़रूर थी। यह तो कभी पता नहीं कि प्राचीन काल के राज्य की क्या क्रूर घटना उस कमरे में हुई थी अथवा फ्रेंच क्रान्ति का कौन सा मृत्यु नाटक उसमें खेला गया; परन्तु अब कोई भी उसमें रहने को तैय्यार नहीं होता था, यहाँ तक कि अवश्यकता से अधिक उस दरवाज़े की छाया में खड़ा होना तक लोग पसन्द नहीं करते थे। यह भी कारण मान सकते हैं कि अन्तिम किरायेदार के दुःखद अन्त के ही कारण उस कमरे का इतना बुरा नाम पड़ा (और किरायेदार की मृत्यु भी बड़ी भयानक हुई थी), लेकिन उसके आने के पहिले भी वह कमरा ख़ाली था। वह तो कमरे के भय से बिलकुल भी विचलित नहीं हुआ था वरन् उलटे किराया कम कर देने के लिये झगड़ा भी था। और बाद में उसने अपने आप को गोली भी मार ली जब कि पुलिस बाहर से हत्या के अपराध में पकड़ने के लिये दरवाज़ा पीटती रह गई। इसलिये, जैसे कि मैं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहिले बतला चुका हूँ, उसके अन्त ने कमरे की मनहूसियत को बढ़ा दिया यद्यपि उसे प्रारम्भ करने में इसका कोई हाथ नहीं था। और अब तो दस साल भी निकल गये थे। उसके पुराने फर्नीचर को बेंच भी दिया गया था और अब कमरे में कुछ भी नहीं रक्खा गया था।

यदि कोई पचीस वर्ष का हो, स्वस्थ, भूखा तथा ग़रीब भी हो, तो सस्ते ठहरने के स्थान से केवल सिर हिला भय का भाव सूचित करना डरा कर नहीं भगा सकता है। एटवाटर पचीस वर्ष का था, साधारणतया स्वस्थ, अक्सर भूखा तथा सदैव दरिद्र था। वह पेरिस में रहने आया था क्योंकि उसने अपने बचपन से सुन रक्खा था कि वहाँ लन्दन से अधिक सस्ते में काम चल जाता है। और यह तो मानी हुई बात थी कि उसके चित्रों की बिक्री कम नहीं होयेगी, क्योंकि अभी तक एक भी चित्र नहीं बेंच पाया था।

एटवाटर को यह मकान बग़ल वाले मकान के चौकीदार ने दिखाया था। इस मकान का निजी चौकीदार कोई नहीं था। यद्यपि इसका सदर फाटक दिनोरात खुला रहता था। चौकीदार अधिक नहीं बोला, पर एटवाटर के इसी मकान को देखने के लिये आतुर होने पर उसे आश्चर्य अवश्य हुआ था।

"हुजूर इंगलेंड से आये हैं ?"

"हाँ।"

"कमरा आरामदेह तो है पर ज़रा ऊँचा ज़्यादह है, और शायद अब ज़रा गंदा भी होगा क्योंकि हाल ही में कोई था नहीं।"

यह मानी हुई बात थी कि चौकीदार को बाहरी मकान ढूँढ़ने वालों को कमरे की बदनामी बताने से कोई मतलब नहीं था। और सचमुच अगर वह कोई किराये दार फाँस सकता था तो मकान मालिक से कुछ कमीशन भी मिलने की आशा थी, यद्यपि किराया इतना कम था कि कमीशन नाम मात्र ही को होता।

लेकिन जितना चौकीदार समझता था उससे कहीं अधिक एटवाटर को मालूम था। उसने भुतहे कमरे की कथा सुनी थी, पूरी नहीं पर टुकड़ी में। नीचे वाली मंज़िल में रहने वाले घड़ीसाज़ ने ही उससे पहिले बात करने का मौक़ा पाया था और उसी ने उसे चौकीदार के पास भेज दिया था। यह बुड्ढा ज़रा बक्की था। उसने बताया कि कमरे में रोशनी अच्छी थी, उत्तर-पूर्व से आती हुई,—कम से कम उससे अच्छी जो कि घड़ी साज़ी के लिये उसको नीचे वाली मंज़िल में मिलती थी। यह लाभ देख कर और किराया कम पाकर उसका ख़ुद इरादा था कि ले ले और बहुत पहिले ही ले लेता—सिर्फ़—ख़ैर, सिर्फ़ यही कि कुछ और बातें थीं।

"हुजूर शायद परदेशी हैं, और शायद हुजूर को भुतहे कमरों में सोने में डर नहीं लगता है; लेकिन यह केवल बदनामी है, जैसा कि सब लोग जानते हैं। तब भी बिना जाने-बूझे किसी परदेशी का कमरा किराये पर ले लेना, बिना किसी किसी भय के और फिर भयानक घटनाओं में पड़ जाना, बड़ा दुर्भाग्य होगा।"

यहाँ पर बुड्ढे ने ज़ुबान में लगाम लगा ली, शायद यह सोच कर कि ऊपर वाले कमरे के बारे में अधिक ख़बर देने से मकान मालिक बिगड़ जायगा। तब भी उसने काफ़ी इशारा कर दिया था, यह सोच कर कि उसका मामूली आगाह करना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिक बुरा न होगा।—और आप पूछते हैं कि आख़िर उस कमरे के दुर्भाग्य का असली रूप क्या है, तो कौन बता सकता है? और कदाचित् वहाँ कुछ भी बात न हो। लोग तो दुनिया भर की बातें लगाते हैं। यह बात तो है कि बहुत दिनों से कमरा ख़ाली पड़ा है और वह स्वयं वहाँ जाना पसन्द नहीं करेगा। पर शायद वहाँ की मनहूसियत दूर करने का यश हुजूर के ही हाथ लगना चाहता है। और अगर हुजूर का इरादा है कि दुर्भाग्य का सामना किया जाये तो वह दिल से दुआ करेगा कि कामयाबी हुजूर की क़दमबोसी करे।

इतना सब घड़ीसाज़ ने बक डाला और अब बग़ल के मकान वाला चौकीदार आलीशान लकड़ी मढ़ी हुई सीढ़ियों पर लिये जाता है चाभियाँ हाथ से लटकती हुईं। अन्त में वह काले द्वार के सामने आकर रुक गया, मानो भौंह चढ़ाये दैत्य के मुख में आ गया हो। ज़रा अटक कर चाभी घूमी और द्वार को धक्का दे कर उसने खोल दिया। उसका अदब के साथ एक ओर खड़े हो कर एटवाटर को अन्दर जाने के लिये रास्ता देने में केवल अदब का ही हाथ न था।

किसी समय में पर्दा लगाकर दो भाग करने के प्रयास के अतिरिक्त कमरे में कुछ भी गड़बड़ न थी और वह काफ़ी बड़ा था। इस कमरे की हवा में कुछ अस्वाद वस्तु थी,—बदबू नहीं, चाहे शुरू में बदबू ही सी लगती पर यदि कोई ग़ौर करे तो नहीं मालूम पड़ती थी। कमरे को पार कर एटवाटर ने चौड़ी खिड़की खोल दी। गली के पार की छतों और चिमनियों की उसके सामने नुमायश सी लगी थी। सेंट सुलपिस के गिरजे की मीनारों की जोड़ी ठीक सामने मँडरा रही थी—कुरूप और भयावह।

कमरे को कितनी ही हवा क्यों न दीजिये, वहाँ का अस्वाद बना ही रहता था। मनुष्य की सब इन्द्रियों के द्वारा उसमें एक दब्बू भीरु, रुग्ण-सी अवस्था प्रवेश कर जाती थी। या शायद इन्द्रियों द्वारा नहीं वरन् किसी और मार्ग से। पर वह भीरु अवस्था कमरे में पहुँचते ही कब्ज़ा कर लेती,—कहाँ से घुसी, इसका पता नहीं। एटवाटर ने जी कड़ा कर यही सफ़ाई दी कि ऐसी ख़राब हालत के आने का कारण और कुछ भी नहीं है, केवल बहुत दिनों की बन्द खिड़की और द्वार है। और चौकीदार ने, द्वार के पास खड़े-खड़े दबे स्वर में 'हाँ' में 'हाँ' मिलाई। कुछ क्षण तक एटवाटर कुछ हिचकिचाया, सँभलने की चेष्टा करने पर भी। परन्तु किराया कितना कम था! और कम होने पर भी उससे एक पैसा अधिक देने की सामर्थ उसमें थी नहीं। रोशनी तो अच्छी आ रही थी—यद्यपि ऊँची नहीं थी, और कमरा इतना बड़ा था कि उसका मामूली-सा सामान बड़े मज़े में आ जाता। एटवाटर के मन ही मन बड़ी भारी बहस हो गई। यदि यह अवसर हाथ से निकल जाने दिया तो जन्म भर अपने को कोसते बीतेगा; और यह ख़याल कि एटवाटर डर गया तो उसे आत्मग्लानि में डुबो देगा और फिर जब उसे इस भीरुता का स्मरण होगा तो वह झेंप के मारे लाल पड़ जाया करेगा। उसने चौकीदार से कहा कि, खिड़की और दरवाज़ा दिन भर खुला रक्खे, और कमरा उसने ले लिया।

पेरिस के थोड़े से दोस्तों से जाकर जब उसने सुनाया कि भुतहा कमरा उसने किराये पर लिया है, तो उसके शब्दों में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मज़ाक की पुट थी। क्योंकि, उस कमरे से दूर, जब उसने ठंडे दिमाग़ से विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि, कमरे के लिये घृणा और भय जो वहाँ उत्पन्न हुए थे वे केवल उसकी कल्पना और भ्रम थे। साफ़ बात थी कि कमरे के अस्वाद का कोई भी उचित कारण वहाँ नहीं था, और इसलिये केवल कल्पना नहीं थी तो क्या था! उसने दृढ़ विचार किया कि इस भेद का वह प्रारम्भ से ही डट कर सामना करेगा और सब से पहिले अपने सिर में से घड़ीसाज़ द्वारा उपजाये हुए भ्रम और सारहीन कल्पनाएँ हटा देगा। और इसका एक ही उपाय था कि जी कड़ा कर सब मुसीबतों का सामना कर डाले। और असल में, सारे दिन इधर-उधर घूमते-घूमते, कभी अपनी आवश्यकता की चीज़ें ख़रीदते हुये—कभी किसी और काम के लिये, इस भुतहे कमरे का सामना करना उसके लिये अति मनोरंजक खेल-सा प्रतीत होने लगा था। उसे याद आया कि केवल दो ही वर्ष हुए इङ्गलैंड में उसने एक भुतहे मकान में रहने की चेष्टा की थी, किन्तु मकान मालिक नहीं मिल पाया था। अब यहाँ तो स्वयं साक्षात् सब तैयार था और भविष्य में सुनाने के लिये एक कहानी तो मिल ही रही थी। इसी समय उसे यह भी ध्यान आया कि यदि वह उस कमरे का प्राचीन इतिहास ढूँढ़ कर लिख डाले, तथा अपनी बीती हुई घटना लिख कर साथ-साथ किसी मासिक पत्र में भेज दे, तो कुछ रुपया भी मिल जाने की आशा थी।

उसकी आवश्यक चीज़ें इतनी मामूली और थोड़ी थीं कि उसी दिन तीसरा पहर होते-होते सब ख़रीद ख़तम हो गई और कमरा रहने के लिये तैयार हो गया।

मोंपारनास गली के सस्ते गन्दे होटल से उसने अपना भोजन का झोला ले लिया और अपनी नई जगह ले आया। कमरे की चाभी अब उसकी जेब में थी, और अब वह पहिली बार कमरे में अकेला घुसा। खिड़की अभी तक खुली थी, पर वह—कमरे के वायुमण्डल का वह दब्बूपन, दिल को डुबा देनेवाला स्वाद-सा, गला घोंटता सा प्रतीत होता हुआ, शरीर में न जाने कहाँ से घुस कर अधिकार जमाने वाला, कमरे भर में व्याप्त हो रहा था। फिर उसने अपनी कल्पना को ही दोष दिया। उसने पैर पटके और सीटी बजाई, और अपने पेशे की सम्पत्ति—केनवस, और पूर्वीय देशों के कुछ प्राचीन हथियारों की एक पोटली, खोलने में जुट गया। पर इस काम में उसका मन नहीं लग रहा था। कई बार उसने अपने आप को पीछे मुड़ कर देखते हुये पकड़ा बिलकुल बच्चों की सी बात। वह अपने ऊपर हँसा भी—कुछ चेष्टा करने के बाद; और तम्बाकू पीने के लिये दृढ़ विचार होकर बैठ गया। वह अपनी नई परिस्थिति से परिचित हो जाना चाहता था। किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसने अपनी कुर्सी को पीछे, दीवार की ओर सरकाते हुए पाया। कुर्सी अब बिलकुल दीवार से लग गई थी। अपने कार्य की सफ़ाई देते हुए उसने दलील पेश की कि, वह दीवार के पास कुर्सी रख कर सारे कमरे पर नज़र रखना चाहता है। ताकि कमरे से डर न लगे। ऐसे ही वह वहाँ बैठ कर ताकता रहा और धुँआ फेंकता रहा, और बैठे ही बैठे उसकी दृष्टि अपने और खिड़की के बीच में रक्खी हुई मेज़ पर पड़े मलय देश के एक कृपाण पर पड़ी। कृपाण—उमेठा हुआ, तिरछे फल वाला, ख़ूनी-सा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

औज़ार था। मूठ के गाँठ नुमा सिरे पर पक्षी का सिर तराशा हुआ था, चोंच भी तराशी हुई और आँख किसी धुँधले लाल पत्थर की। वह इस लाल बिन्दु समान आँख को संज्ञाहीन की भाँति एकटक घूर रहा था। कृपाण चन्द्राकार फल सहित इस समय एक दूसरा लोक वासी जन्तु के समान प्रतीत हो रहा था, चोंच लगा सर्प सा, शरीर बल खाता हुआ, मूठ कुँडली मारी सी, किसी अशुभ स्वप्न की भाँति भयोत्पादक, उसके सारे विचारों तथा शक्तियों पर अनुशासन करने वाला। बाक़ी कमरा धुँधला पड़ता जा रहा था, किन्तु लाल पत्थर की चमक बढ़ रही थी, कमरे में किसी और वस्तु की उपस्थिति का उसे कोई भास नहीं हो रहा था। तब यकायक, भारी धमक के साथ सेंट सुलपिस के बड़े घंटे ने 'टन्' कर उसे जगा दिया। वह कुछ चकित सा, चौंककर खड़ा हो गया।

कृपाण वहीं मेज़ पर पड़ा था, अजनबी और हत्यारा-सा किन्तु अब बिलकुल वैसा ही जिसे वह अच्छी तरह जानता था; परन्तु यह जान कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि दीवार से सटी हुई उसकी कुर्सी अब लगभग ६ फ़ुट आगे, मेज़ के पास थी; ज़रूर ही उसने अनजान में आगे खींच लिया होगा, कृपाण की ओर जिस पर उसके नेत्र जड़े थे.....गिर्जे के भारी घंटे 'टन् टन्' किये जा रहे थे,—शाम की प्रार्थना का समय था।

उसे ठंड लग रही थी, क़रीब-क़रीब वह काँप ही रहा था। उसने कृपाण उठा कर जल्दी से एक दराज़ में डाल दिया और बाहर जाने को तैयार होने लगा। घड़ी में देखा तो बहुत समय निकल गया था, उसके अनुमान से कहीं ज्यादह; शायद शून्यता के दौरे में काफ़ी समय लग गया था और शायद वह ऊँघ भी गया होगा।

धीरे धीरे वह नीचे आया और सड़क पर आ गया। उसे अपने ऊपर बड़ी लज्जा आ रही थी, क्योंकि अब उसे क़बूलना पड़ रहा था कि उसे कमरे का बड़ा भय लग रहा था, वह बता नहीं सकता था क्यों। कमरे में न तो कुछ सुना ही था और न कुछ देखा ही। भुतहे कमरे आदि के बारे में जो भय अनुमान किये जाते हैं उनमें से कोई भी सामने नहीं पड़ा था। उसे लग रहा था कि यदि किसी का सामना हो जाता तो जी का भार हलका हो जाता। किन्तु वहाँ तो केवल निर्बल बनाने वाली, शरीर में प्रवेश पाने वाली किसी वस्तु का आभास, किसी की उपस्थिति ही थी, कोई घृणोत्पादक, घृणित, अमानुषिक, चीज़ भास रही थी लगभग सशरीर। उपस्थिति से अधिक, वहाँ शक्ति थी, दुःशासन का—एटवाटर को यही याद था। परन्तु फिर भी यह याद प्रति क्षण क्षीण होती जाती थी। संध्या घिर आई थी। एटवाटर को एक भुतहे मकान की घटना याद हो आई जिसमें कि जाँच करने के बाद पता लगा था कि, वहाँ केवल भय की आत्मा का निवास था और कुछ नहीं। उसने अपने को समझाने की चेष्टा की कि उसके कमरे के साथ भी वही बात है। उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि केवल कल्पना के ही झोंके में आकर वह डर गया—केवल भय ने उसे डरा दिया।

रात को लौटने पर उसका इरादा पक्का था। अब वह दुबारा मूर्खता का शिकार नहीं होगा। अब तक उसने न कोई देखा था और न कुछ सुना था। यदि इन्द्रियों द्वारा भास करने का कुछ सामने आयेगा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो उससे निपट लिया जायगा। बड़े ढंग के साथ उसने कपड़े बदले और बिस्तर में घुसा। मोमबत्ती और दियासलाई उसने हाथ के पास रख ली थीं—मौक़े पर काम पड़ने के लिये। उसका ख्याल था कि नींद लाने में कुछ कोशिश करनी पड़ेगी और दिक़्क़त होगी, पर तकिये पर सिर रखते ही वह निद्रा देवी की गोद में था।

खिड़की में से आती हुई तेज़ धूप ने उसे जगा दिया। वह चकाचौंध हो, बिस्तर पर बैठा ही बैठा कमरे में इधर उधर देखने लगा। मालूम पड़ता था कि वह घोड़ा बेंच कर सोया था। पर वह स्वप्न देखता रहा था—उफ़, कितने भयानक स्वप्न थे! दर्द से उसका सिर फटा जाता था और थकान से उसका बदन टूट रहा था। वह कराह कर फिर तकिये पर लुढ़क गया, पर सिर तकिये पर रखते ही दर्द की नोंक सी सिर को वेध गई। बिस्तर से निकल कर खड़ा हुआ तो लड़खड़ा गया। ऐसा मालूम पड़ता था कि शरीर में जान ही न हो—शाम को ख़राब शराब अधिक मात्रा में पी जाने के बाद जो हालत होती है अगले दिन। और स्वप्न बड़े भयावह स्वप्न थे वे; उसे यह अवश्य याद था कि स्वप्न बड़े भयावह थे, पर क्या थे इसकी उसे कोई याद न थी। उसका सिर इसके बारे में बिलकुल खाली था। उसने दोनों हाथों से आँखें मलीं और मेज़ की ओर ताकने लगा: मेज़ पर बल खाता हुआ सर्प शरीर कृपाण पड़ा था, मूठ की चिड़िया के सिर में लाल पत्थर की आँख दहक रही थी। ठीक उसी स्थान पर रक्खा था जहाँ कल रक्खा था और वह घूर रहा था, और वह क़सम खाकर कह सकता था कि कल उसने इसी कृपाण को दराज़ में पटक दिया था। शायद उसने कृपाण रखने का स्वप्न देखा हो। 'उँह, अब सँभाल कर रक्खे देता हूँ' और सावधानी से उसने दराज़ में कृपाण बन्द कर दिया। उसका सिर भन्ना रहा था, फिर भी वह कपड़े पहिन कर बाहर निकला।

नीचे आने पर उसे वह बुड्ढा घड़ीसाज़ अपने दरवाज़े पर खड़ा मिला। उसकी 'गुड मार्निंग' में प्रश्न का पुट था। "शायद हुज़ूर को अच्छी तरह नींद नहीं आई?"

कुछ-कुछ संशय में पड़े हुए होने पर भी एटवाटर ने तत्काल जताया कि उसे बड़ी अच्छी नींद आई थी। "और अभी तक न कोई भूत देखने को मिला और न सुनने को!" उसने बताया।

"कुछ भी नहीं!" बुड्ढे ने उत्तर दिया, अच्छा? यह तो बड़ी अच्छी बात हुई! यहाँ नीचे तो मुझे मालूम पड़ रहा था कि हुज़ूर बड़े बेचैन हो कमरे में चहल-क़दमी कर रहे थे, पर शायद मेरा ख्याल ग़लत था। अब तो मुझे हुज़ूर को मुबारकबादी देनी चाहिये। हुज़ूर ने मनहूसियत को निकाल फेंका; बड़ी हिम्मत का काम था।"

वह मुस्कराता रहा और कृतज्ञता प्रकाशित करता रहा; किन्तु जब एटवाटर उतर कर बाहर जा रहा था तो घड़ीसाज़ की आँखें उसी पर लगी थीं और उसके चेहरे पर विस्मय के चिन्ह थे।

घंटे भर घूमने के बाद एटवाटर ने काफ़े में जाकर कॉफ़ी और बिस्कुट का नाश्ता किया और कुर्सी पर बैठा-बैठा ऊँघा भी, पर अधिक देर तक नहीं। अब उसकी हालत ठीक थी किन्तु थकान अभी नहीं गई थी। एक दूकान की खिड़की में जड़े दर्पण में उसने अपनी सूरत देखी और देखा कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने निजी शीशे में देखने के बाद अब शकल में कुछ ज़रा-सा फ़र्क था। इससे उसे कुछ धक्का ज़रूर लगा। ऐसी ख़राब रात बिताने पर चेहरे पर मुर्दानी छानी ही चाहिये थी, पर उसने कुछ और भी देखा। क्या देखा? उस फ़र्क से उसे एक कथा याद आ रही थी—शायद प्राचीन जापानी कथा—जिसे सोचने की कोशिश उसने शीशे में अपना शुष्क, प्रेत जैसा मुख देख कर की। एक कथा शायद किसी मनुष्य के बारे में जिस पर प्रेत चढ़ा था। वह मनुष्य जब शीशे में अपना मुख देखता था तो अपने चेहरे के स्थान पर उसे उस प्रेत का चेहरा दिखाई पड़ता था।

काम करने की उसे बिलकुल इच्छा नहीं थी। सारा दिन उसने पार्कों की बेंचों पर, कॉफ़े की मेज़ों पर, और कुछ देर जुआ-ख़ाने में बिता दिया। शाम को एक अंगरेज़ दोस्त मिला जो कि देखते ही आँखें फाड़ कर खड़ा हो गया। कंधे झकोर कर नाक के पास से चेहरा देख, सिर हिला कर उसने घोषित किया कि एटवाटर आवश्यकता से अधिक परिश्रम कर रहा है और सब से ज़्यादह उसे एक चीज़ की ज़रूरत है—भरपेट स्वादिष्ट भोजन, और भोजन फ़ौरन ही मिलना चाहिये। "अभी ला पेरुज़ में तुम मेरे साथ डिनर खाओगे।" उसने कहा, "मुझे तो बड़ी भूख लगी है। चलो गाड़ी लेकर चलें।"

उन्होंने गाड़ी की कुछ देर तक खड़े हो कर प्रतीक्षा की। सामने से एक मनुष्य, अख़बारों का गट्ठर लिये, चिल्लाता निकला।

"अभी एक गाड़ी करे लेते हैं।" एटवाटर के मित्र ने दोहराया, "और बातचीत का ढर्रा जारी रखने के लिये यह नया हत्याकांड। ए, अख़बार!"

उसने अख़बार ख़रीदा और एटवाटर के साथ जाकर गाड़ी में बैठ गया।

"मेरा तो ख़याल है कि मैं उस बेचारे को पहिचानता भी था। मैं समझता हूँ कभी उसके भी अच्छे दिन थे।"

"कौन?"

"वही बुड्ढा मनुष्य जिसकी कल रात रु त्रोका में हत्या कर दी गई। कम से कम हुलिया तो वही है। वह सदैव कॉफ़े आदि के आस-पास ही भटकता रहता था और पत्र आदि ले जाने का काम कर देता था। इस गाड़ी में तो पढ़ना मुश्किल है। किन्तु इस अंक में कोई नई बात तो मालूम नहीं होती। हत्यारी तो अभी पकड़ा ही नहीं गया है।"

एटवाटर ने अख़बार ले लिया, और शाम की गिरती रोशनी में पढ़ने का प्रयास करने लगा। एक बुड्ढा मनुष्य रु त्रोका की पैदल पटरी पर मरा पाया गया था जिसका शरीर दर्जनों घावों से भरा था। लाश पहिचानी जा चुकी थी। वह एक अकेला बुड्ढा था जिसका दुनिया में कोई न था; और न कोई—क्योंकि वह इतना वृद्ध और ग़रीब था—कोई शत्रु ही था। वह लूटा नहीं गया था, क्योंकि जेब के थोड़े से पैसे जेब ही में पड़े थे। शायद बहुत रात बीते, अपने घर लौटते समय, उस पर आक्रमण किया गया था, किसी ख़ूनी पागल द्वारा, क्योंकि बारम्बार बड़ी निर्दयता से वार किये गये थे। अभी तक कोई गिरफ़्तारी नहीं हुई थी।

एटवाटर ने अख़बार अलग रख दिया। "ऊँह," उसने कहा, "मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता! मेरी तबियत ऐसे ही ठीक नहीं है और रात भर इतने बुरे स्वप्न देखता रहा। लेकिन मैं समझ नहीं सकता कि पढ़ कर मुझे उनका ख़याल क्यों आ रहा है!

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेकिन कम से कम ऐसी ख़बरों से तो किसी की तबियत ठीक हुई नहीं है।"

"कदापि नहीं," उसके मित्र ने तहेदिल से हाँ में हाँ मिलाई, "यह तो ऊपर पहुँच कर मिलेगा क्योंकि...यह लो हम लोग पहुँच ही गये! बरगंडी की एक बढ़िया बोतल और अच्छे से अच्छा खाना, बस तुम्हारी दवा यही है। उतरो!"

नुस्ख़ा वास्तव में उत्तम था। एटवाटर का मित्र हँसमुख था और लच्छेदार बातें करनेवाला। भोजन बड़ा सुन्दर रहा। एटवाटर सोचने लगा कि दिन भर तो बड़ा सा मुँह लटकाने का कोई लाभ नहीं होता जब कि केवल रात भर अच्छी नींद न आना ही बहाल हो। कहाँ कल रात का भोजन और कहाँ आज की दावत! ख़ैर, अच्छा ही हुआ कि उस साढ़े तीन आने वाले ने केवल उसकी नींद ही ख़राब की।

ला पेरूज़ से निकलते समय एटवाटर अपने मित्र की ही भाँति प्रसन्नचित्त था। खाते खाते देर हो गई थी और अब नदी पर जा कर बूलवार्द सड़क में घूमने के सिवाय कोई काम नहीं रह गया था। देर तक दोनों घूमते रहे और जान-पहिचान के लोगों से मनोरंजन करते रहे।

घर लौटते समय एटवाटर का जी बहुत हलका था। अब ऊँघ भी नहीं मालूम दे रही थी। उसकी तबियत बिलकुल ठीक थी। उसे लगा कि वह अब ज़ल्दी ही कमरे का आदी हो जायगा। कारण केवल यही था कि इधर कई दिनों से अकेला था और यह इकलापन ही उसे घोलने लगा था। कैसा मूर्खता-पूर्ण कारण था!

फिर उसे तत्काल नींद ने धर दबोचा और वह गहरा सोया और फिर उसने स्वप्न देखे। किन्तु इस बार का जागरण दूसरे प्रकार का था। आँखों को चकाचौंध करने वाला न कोई सूर्य वहाँ उसकी भारी पलकों को उठा रहा था, और न सेंट सुलपिस के गिर्जे के कोई घंटे सुबह की प्रार्थना का मधुर आह्वान कर रहे थे, न कानों में शहर की सुमधुर ध्वनि पड़ रही थी। वह काँपता हुआ, अन्धकार में आँखे फाड़े देखता हुआ, फर्श पर गिर कर मुँह के बल गिरता हुआ, हिचकियों में साँस भरता हुआ जगा; खिड़की में से गली का शोर गुल आ रहा था। गला फाड़ कर चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें थीं, पीछा करने का तुमुल शब्द था, भागते हुये मनुष्यों की पदध्वनि थी, चिल्ला-पुकार और खड़खड़ थी और यदा-कदा साफ़ आवाज सुनाई दे जाती थी, अन्य आवाज़ों से ऊँची और साफ़——"हत्यारा को पकड़ो!"

अन्धकार में वह पैर खींच कर खड़ा हो पाया। यह क्या है—यह सब क्या? फिर कोई स्वप्न?...उसके पैर काँप रहे थे और उसे पसीना आ रहा था। और जब उसने खड़े रहने के लिये खिड़की का सहारा लिया तो उसे मालूम पड़ा कि वह बाहर जाने के पूरे कपड़े पहिने है! उसे आश्चर्य हो रहा था। वह सिर पर टोप तक लगाये था। मनुष्यों की भीड़ भागती हुई गली में आई और निकल गई। चिल्लाहट धीमी पड़ती जा रही थी। वह क्यों जाग पड़ा? वह कपड़े क्यों पहिने हुए है? तब उसे अपनी रक्खी हुई दियासलाई की याद आई, और ढूँढ़ने के लिये उसने मुड़ कर टटोला। लेकिन, अरे! उसके हाथ में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहिले ही से कुछ चीज़ थी, कोई गीली चीज़, चिपकनी। हाथ की चीज़ उसने मेज़ पर पटक दी। और दियासलाई जलाते जलाते, देखने के पहिले ही वह समझ गया कि क्या चीज़ थी। दियासलाई भभकी और फिर जल उठी, और उसने देखा कि मेज़ पर वह भयंकर कृपाण पड़ा है—ख़ून से सना, टपकता हुआ, ख़ूनी।

उसके हाथ ख़ून से रँगे थे, दियासलाई उसकी उँगलियों में चिपक गई थी। विचार आते ही उसका दिल दहल गया; सिर उठा कर उसने दीवार में लगे शीशे में दियासलाई की अन्तिम गिरती हुई लपट में उस ऊपर के कमरे के प्रेत का चेहरा देखा।

—अंगरेज़ लेखक, आर्थर मॉरीसन

कुलवती

(श्रीचन्द्र किरण देवी)

सुमित्रा ने बचपन में बड़े-बूढ़ों को कहते सुना था 'दुहेजू की बीबी और बादशाह की घोड़ी, जितना ही कूदे उतनी ही थोड़ी!' किन्तु दुहेजू की बीबी बन कर भी, कूदना तो दूर की बात थी उसके लिये चलना-फिरना भी सपना हो रहा था। वह ठीक ठीक बुड्ढे की स्त्री हो सो बात नहीं। बृजमोहन बाबू को देख कर कोई उन्हें बूढ़ा नहीं कह सकता था। अड़तीस साल का पुरुष यदि स्वस्थ शरीरी हो तो उसे बूढ़ा कह भी नहीं सकते; हाँ अधेड़ समझ सकते हैं। बृज बाबू ठीक वैसे ही थे।

मझौले क़द, साँवले रंग और गठे हुये शरीर के बृज बाबू की प्रथम पत्नी जब चार बच्चों और उनको इस संसार सागर में डूबते-उतराते हुये छोड़ कर क्षय रोग से चलती बनी, तब उसकी तेरहवीं वाले दिन उन्होंने आँखों में आँसू भर अपने रिश्ते-नाते के चाचा, मामा और बड़े भाइयों के सामने कहा था—"अब तो मैं पेन्शन ले लूँगा; गिरजा तेरह वर्ष की हो गई—एक दो साल में अपने घर-द्वार की हो जायगी। लड़के जब सयाने होंगे तब देखी जायगी,—अब किसके लिये दफ़्तर की चक्की पीसूँ?"

बृज बाबू के इस प्रबल वैराग्य को देख कर उन लोगों ने उन्हें व्यग्र होकर समझाया था—"पागल हुये हो! कल के लड़के होकर हमारे सामने ऐसी बातें! गिरजा तो दो वर्ष में पराई हो जायगी, तब तीनों लड़कों के लिये क्या तुम चूल्हा फूँकोगे?—रंज क्यों करते हो? औरत का क्या, एक गई दूसरी तैयार—और पहिले से अच्छी! तुमने भी भली फ़िक्र करी! सौ रुपये पाते हो, आज कल के ज़माने में बड़े-बड़े वकीलों को इतना नहीं पड़ता; तुम्हें और लड़की की कमी! बैठे देखते रहो, लड़की वाले तुम्हारे क़दम चूमते न दिखाई दें तो हमारा नाम बदल देना।"

बात भी वैसी ही हुई। बृज बाबू के वधुर होने का समाचार फैलते ही ढेर के ढेर लड़कीवाले यह लड़का (!) देखने आने लगे और चार महीने बीतते न बीतते बैशाख की पहिली ही लग्न में वे सत्रह वर्ष की स्वस्थ, सुन्दरी, युवती सुमित्रा के दिल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिमाग़ और शरीर सभों के वे क़ानूनी मालिक बन बैठे।

सुमित्रा की प्रायः सभी सहेलियाँ और तीनों बड़ी बहिनें उससे पहिले ब्याही जा चुकी थीं। लीला और विमला तो एक-एक बच्चे की माँ भी बन चुकी थीं। उनमें सुमित्रा को छोड़ कर सभी कुमार युवकों की बहुयें बनी थीं। सास, ससुर, देवर, जेठ वाले भरे-पुरे घरों में गई थीं। सिर्फ़ सुमित्रा ही ऐसी थी जिसे देवर-ननदों के अभाव में चार छोटे-बड़े बच्चे और सास-ससुर की कमी पूरी करने को अड़तीस वर्ष के बृज बाबू मिले थे! उसकी इस बुरी क़िस्मत पर उसकी माँ चुपके-चुपके बहुत रोई। बहिनों ने आँसू पोंछे, बहिनोइयों ने चैमेगोइयाँ कीं और उसकी सहेलियों ने भी फेरों की रात तक उसे भाँति-भाँति का दिलासा दिया था। उसके गले में बाहें डाल कर सिसकियाँ भरी थीं। किन्तु वह स्वयं रोई तो क्या, बिदा के समय भी बड़ी मुश्किल से चार आँसू गिरा सकी थी।

उसे इस ब्याह की ख़ुशी होगी, ऐसा न कोई विश्वास करेगा और न कह ही सकेगा; लेकिन उसे सन्तोष ज़रूर था। दो साल की कड़ी खींचातानी के बाद, वह एक ठिकाने तो लग गई। उसके लिये माँ को अब घर-बाहर सिर नीचा न करना होगा। चाचा को जगह-जगह न थूकना पड़ेगा, बहिनों को चिन्ता न करनी पड़ेगी; यही क्या कुछ कम है? इसी से जिस दिन चाचा ने इस रिश्ते को पक्का करने के लिये सगाई भेजी थी उस दिन उसने एक शान्ति की साँस लेकर एक रोटी ज्यादा खाई थी! उसे पढ़ी-लिखी कह सकते थे। बाबू अलख प्रकाश, उसके पिता, स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे। वे एक भाग्यवादी मस्त जीव थे। लड़का न होने का उन्हें कभी रंज न हुआ। सुमेधा, सुशीला, सुनीति और सुमित्रा को देखकर उन्होंने कभी मुख मैला न किया। सुमित्रा की माँ इकट्ठी चार-चार लड़कियाँ होने का कभी अफ़सोस करने भी लगती, तो वे तुरंत कह देते—"अपने भाग्य से सब खाते हैं, ये विचारियाँ भी, जो इनके भाग्य में होगा, ले जायेंगी। लड़के सुसरे ही क्या थैली बाँध कर लाते हैं! उलटे नालायक़ निकल जाँय तो सारी उम्र उनके लिये झीकों! ये तो चार दिन की चिड़ियाँ हैं। सुमित्रा की माँ! तुम मेरे शेर-बहादुरों को कुछ न कहा करो। देखती तो रहो, मैं बेटी देकर कैसे-कैसे लायक बेटे लाऊँगा!" और उन्होंने किया भी वही। अपनी तीनों बड़ी लड़कियों को उन्होंने अच्छे घर-वरों से ब्याहा। वे ख़र्चीले आदमी थे। 'स्टोर कीपर' होते हुये भी रुपया तो दूर, वे एक मकान तक न बनवा सके। सुशीला के ब्याह पर ही उन्होंने आफ़िस से थोड़ा ऋण लिया था; फिर धीरे-धीरे उसे उतार दिया। दो साल बाद सुनीति के ब्याह में भी इसी की पुनरावृत्ति करनी पड़ी। सुमित्रा का अपनी अन्य बहिनों से बहुत अधिक अन्तर था। तीसरी सुनीति के ब्याह में वह होगी कोई नौ साल की। अलख बाबू के अधिक दुलार की अधिकारिणी सुमित्रा ही हुई थी। वह अपने बाबू जी की तरह ही स्वस्थ, सबल, गोरी और लम्बी थी। अलख बाबू प्रायः कहा करते थे—"मेरा असली बेटा तो सुमित्रा ही है। इसका ब्याह मैं जल्दी नहीं करूँगा। ख़ूब पढ़ाकर राजकुँवर के साथ इसे ब्याहूँगा! फिर अपने बेटे को घर ही रख लूँगा!"

वे यदि जीते रहते तो करते भी ऐसा ही, मगर अकस्मात् इन्फ्लुएंजा के प्रकोप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में वे चल बसे। तब सुमित्रा ग्यारहवाँ ख़तम करके बारहवें में क़दम रख चुकी थी; और स्कूल में आठवीं कक्षा में होते हुये भी प्रथम श्रेणी की छात्रा थी। किन्तु बस वहीं उसकी पढ़ाई ख़तम हो गई। मुशकिलों से रो-धोकर वह परीक्षा दे पाई थी। इसके बाद तो उसे एकदम ही रोटी-पानी और चौका-बर्तन में लगना पड़ा। माँ तो यह न कराती, पर चाची जो ठहरी जल्लाद! भला उसके पति की कमाई पर ही तो दोनों माँ-बेटी पलेंगी। उस पर काम भी न करेंगी? ख़ूब रही! देवरानी के इसी कड़वे रुख़ को देखकर सुमित्रा की माँ ने इच्छा न होते हुये भी सुमित्रा को स्कूल से उठा लिया। फिर तो तीन महीने के भीतर ही वह रोटी बनाना, बर्तन माँजना, झाड़ू देना, यहाँ तक कि चाची के छोटे बच्चे, चार महीने के सन्तोष, के लिये पोतड़े धोना भी सीख गई।

फिर इसी तरह दिन बीते, महीने बीते, वर्ष बीते! सुमित्रा बारह, तेरह, चौदह पार करके पन्द्रहवें में पैर रख गई। और उसके लिये वर का कहीं पता न था। सुमित्रा की माँ उठते, बैठते देवर को टोकती—"लाला, सिम्मों बड़ी हो चली।" और देवप्रकाश भी सिर हिलाकर कह देते—"हाँ भाभी, मुझे भी फ़िकर है।" बस वे चुप रह जातीं। ज्यादा कहने की हिम्मत उनमें थी भी नहीं, कहतीं भी किस बूते पर; यदि उनके पास कुछ जोड़ा-जमा होता तो वे स्वयं ही लड़का भी तलाश लेतीं, लड़कों की कमी न थी। किन्तु वे उन स्त्रियों में नहीं थीं जो पति से छिपा कर हज़ार, पाँच सौ बचा रखती हैं, उनके पास तो वही आठ-सात मामूली गहने और दस-पाँच रेशमी जोड़े थे, इसके बल पर क्या ब्याह हो सकता था?

लाला देवप्रकाश भी क्या करते, विवश थे; एक तो उनके आगे भी दो-दो लड़कियाँ थीं, दूसरे उनकी श्रीमती वृज-मोहिनी देवी का बड़ा शासन—जिसमें अपील करने की कहीं गुंजाइश ही न थी, वह किसी भाँति सुमित्रा के लिये तीन-चार सौ से अधिक व्यय करने को सम्मत न थीं, और उनके विरुद्ध होने की शक्ति और चाहे जिसमें हो, देवप्रकाश में तो थी नहीं। वे लड़केवालों से बात करते, घर देखते, वर देखते, किन्तु जैसे ही ठहरौती (दहेज) की यात्रा देखते तो कलेजा थाम कर घर चले आते। उधर सुमित्रा बड़ी हो रही थी, कुछ तो शुरू से ही उसकी बेल लम्बी थी, उठान भी अच्छी थी, दूसरे चढ़ती उमर का प्रभाव...उसकी देही फटी पड़ती थी... सोलह साल की इस पितृहीन बालिका का यौवन, इस अनुपयुक्त वायुमंडल में भी, मैली धोती के भीतर से, फूट-फूट कर निकलता था। उसकी माँ यह देखती और एक आह भरकर रह जाती, 'आज अगर वह होते तो मेरी लाडो इतनी उमर की होकर भी यूँ सूनी-सूनी फिरती रहती? क्या यूं ही चाची के सारे धन्धे करके भी दिन-रात ताने सुनती! लाज के मारे बाहर नहीं निकलती, कोठे पर तक नहीं चढ़ती...फिर भी जिसे देखो वही, हाय सयानी होगई, हाय बड़ी हो गई, कह कह-कर मेरी बच्ची को आठ-आठ आँसू रुलाते हैं...।' एक दिन उन्होंने जी कड़ा करके देवर से कह ही दिया—"लाला, बैठे-बैठे क्या सोचते हो? क्या सिम्मों के लिये दुनिया से वर उठ गये जो इतनी बड़ी होगई और घर धरी हुई है?" लाला देवप्रकाश भी नित के दहेजों की माँग सुनते-सुनते ऊब गये थे। वह चाहते थे कि जैसे भी हो किसी के साथ सुमित्रा के हाथ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पीले करके छुट्टी पावें। उस दिन उन्होंने भी साफ़ साफ़ कह दिया—"भाभी, तुम तो घर की हालतें देख ही रही हो; चार सौ से ज्यादा खरचना मेरे बस का नहीं, अब इतने में जैसा घर-वर मिलेगा इसे तुम सोच लो...तुम ज्यादा खरच सको तो वैसी कहो, लड़कों की कमी नहीं, और यदि मुझ पर छोड़ती हो तो मुझे जैसा मिलेगा मैं कर दूँगा।" सुमित्रा की माँ ठकमारी-सी खड़ी रह गई। उन्हें यह आशा न थी कि लाला उसे यूँ बखत के बखत धोखा दे जायेंगे। चार सौ...अरे इतना तो उन्होंने सुमित्रा के पहले लड़के के होने पर उठा दिया था। मेरी बच्ची के भाग में क्या अंत को कोई दुहेजू वर ही बँधेगा...वह चुप रहीं और फिर उठ कर भीतर चली गईं। और छः महीने निकल गये, किन्तु अब जैसे दिन आगे बढ़ना ही न चाहते हों—ज्ञात-बिरादरी, टोले-पड़ोस सभी की जुबान पर थी सुमित्रा। 'हाय सयानी कर रक्खी है? जाने क्या करेंगे! जब नाक कट जायगी तब ठीक रहेगा!' विचारे देवप्रकाश भी क्या करें, जैसा मिलेगा करने को तैयार हैं, पर उसकी माँ को भावे तब न। वह तो राजकुमार से ब्याहेगी, राजकुमार से.....पीठ पीछे ही कहते हों सो बात नहीं, मुँह पर भी, हाँ तब स्वर में थोड़ा उतार आ जाता था। कहने वाले तब तार सप्तक से उतर कर मन्द्र या मध्य पर आ जाते थे। अंत को सुमित्रा की माँ ने देवर से कह दिया—"लाला, जैसा मिले तुम कर दो, कहाँ तक इन्तज़ार करूँ, घर की हालत तो कभी अच्छी होनी नहीं जो सिम्मों के लिये हज़ार-बारह सौ निकल सकें, अब जो उसके भाग में होगा सो देखा जायगा।"—शब्दों में कितनी करुणा, निराशा और तिरस्कार भरा था, इसे केवल देवप्रकाश ने अनुभव किया। एक बार उनके मन में हुआ कि क्यों थोड़े से लालच के पीछे लड़की का जीवन दुखी कर डालूं! भाई साहब ने भी तो मेरे लिये घर को घर नहीं समझा था—जो माँगा वही दिया। लेकिन—सन्तोष की माँ को कौन समझावे... उनकी वह द्रवित भावना थोड़ी ही देर में फिर जम गई।

अब लाला देवप्रकाश ने ज़ोर-शोर से लड़के की खोज की, इधर ठीक उन्हीं दिनो, पता नहीं सुमित्रा के सौभाग्य से या दुर्भाग्य से, बृज मोहन बाबू की पत्नी उन्हें ऐन मझदार में छोड़ कर चल बसीं। देवप्रकाश ने उन्हीं के साथ अपनी भतीजी का गठबन्धन करना निश्चित किया। जिस दिन उन्होंने इस सम्बन्ध के विषय में सुमित्रा की माँ से कहा था उस दिन वे चुपके-चुपके सारे दिन रोई थीं। लेकिन सुमित्रा?...सुमित्रा तो कई दिन की रोती हुई आँखों को पोंछ कर एक बार ज़बरदस्ती ही एक सूखी फीकी हँसी हँस पड़ी थी।

... ...

गौना होने के तीसरे प्रातःकाल ने सुमित्रा को एक पक्की गृहिणी पाया। मुँह पर उसके घूँघट था, घर से बाहर वह झाँक नहीं सकती थी, ज़ोर से बोल भी नहीं सकती थी, किन्तु फिर भी वह गृहिणी थी, बहू नहीं। इन्हीं तीन दिनों में, उसे इस घर का, घर के बच्चों का और उन बच्चों के बाप का—सभी का ठीक-ठीक पता मिल गया था। मिलता भी क्यों न,—घर में सास और ननद दोनों के स्थान पर थी बारह-तेरह बरस की हठी मुँह चढ़ी बालिका गिरिजा उर्फ़ बिट्टो; और श्वसुर-जेठ सभी की कमी दूर करने को थे प्रौढ़ वयस्क बृज बाबू! जिन्होंने अपनी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आयु का तरुण, आवेग-भरा, उत्साह-मय भाग किसी दूसरी के साथ बिता कर अब बचे-बचाये नीरस, संकीर्ण और सन्देही अंश को सुमित्रा के साथ बाँध लिया था! किसी तड़पते हुये, प्यासे, अतृप्त हृदय के मिलन की कल्पना तो सुमित्रा ने पहले भी की न थी। हाँ, एक अनुभव-प्राप्त पुरुष के आदरमय सम्भाषण, दुलार-भरे बर्ताव की आशा को उसने अपने पल्ले में अवश्य ही बाँध रक्खा था। उसने देखा था, सुना था और सोचा भी था कि स्त्रियाँ अपने सौत के बालकों पर बड़ा कठोर शासन करती हैं, और उनके वे बुड्ढे पतिदेव, अपनी नई नवेली दुलहिन के चाँद-से मुख को निरख कर, चुपचाप यह सब देखते रहते हैं। मानो अब वे बच्चे उनके कुछ नहीं लगते। संसार में उनका सब कुछ है उनकी वही दुहेजू लाड़ो पत्नी! उसने सोचा—मैं ऐसा नहीं करूँगी! उन बच्चों को अपनी संतान चाहे न भी समझ सकूँ, छोटा भाई-बहिन जरूर समझूँगी, उन्हें प्यार से रखूँगी। मेरे कारण उन्हें पितृ-स्नेह से भी वंचित होना पड़े, ऐसा अवसर मैं कभी न आने दूँगी। तेरह साल की किशोरी गिरिजा को उसका हृदय अपनी लड़की समझने को तैयार ही न होता था, और बच्चन और मुन्ने—वे भी तो उससे थोड़े ही छोटे हैं। हाँ मक्खन जरूर छोटा है। तीन बरस के मक्खन ने जब ब्याह पर ही उसे 'छोटी माँ' कहा था तो उसे कुछ बुरा नहीं लगा। पर कहाँ हुआ वह सब भी! उसकी यह जरा-सी अभिलाषा—छोटी-सी इच्छा भी तो पूरी नहीं हुई। सोहाग-रात की रात को ही उसने अपने करम ठोंक लिये। बृजमोहन बाबू उन रसिक पुरुषों में न थे जिनके हृदय में प्रणय का कोई लुप्त स्रोत छिपा हो और जो नई बहू के लिये प्रेम नहीं तो आसक्ति का ही झरना बन जाँय। उन्होंने तो सुमित्रा से सबसे पहिली बात जो कही, वह यह थी—"सुनती हो जी! अब यह सब घर-बार तुम्हारा ही है, बच्चों को अच्छी तरह रखना, कभी सौतेले समझ कर तंग न करो! मैं पहिले ही कहे देता हूँ। मैंने एक भी शिकायत सुनी तो ठीक न होगा! मैंने कुछ तुम्हारे सौन्दर्य पर रीझ कर ब्याह नहीं किया है, घर सम्हालने को एक औरत चाहिये थी सो तुम्हें ले आया, कभी सौन्दर्य के घमंड में मेरे सिर पर चढ़ना चाहो, यहाँ सो सब नखरेबाजी नहीं चलेगी। समझीं!..." उसने घूँघट के भीतर से ही सिर हिलाकर कहा, "अच्छा!"

"हाँ, बस ठीक है, सीधी तरह रहना, ज्यादा उछालबाजी न करना, मुझे सो सब पसन्द नहीं।" और तब उन्होंने पान की पीक थूक कर हुक्के की निगाली मुँह से लगा ली। और सुमित्रा?—सुमित्रा तो इतना सुन कर ही मानो इस लोक में न रही; उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके सिर पर किसी ने एक मन का पत्थर दे मारा हो, जिसकी चोट से उसकी गर्दन टूटी पड़ती थी! वह और भी गर्दन झुका कर बैठ गई। जाने कब तक वह ऐसी ही बैठी रही। बृज बाबू ने इस बीच में एक झपकी भी ले ली थी। उन्होने आँखें खोल कर देखा—सुमित्रा दबे पैरों बाहर जा रही थी।

"कहाँ चलीं?" उन्होंने पूछा।

"गिरिजा बुलाती है।" किसी प्रकार घूँघट के भीतर से ही कह कर वह झट से कमरे से निकल कर रसोई घर की ओर चल पड़ी। उस कमरे में जैसे उसका दम सा घुट रहा था। बृज बाबू का जो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिचय उसने इन कई क्षणों में पाया था, उसने उसके मन की दशा कितनी विकृत कर दी थी इसे या तो वही जानती थी या फिर परमात्मा ही।

लगभग महीना बीत गया। बरसात की दुपहरी थी। आकाश में काली घटायें घिरी हुई थीं, जिसने उस दुपहरी को भी सन्ध्या बना रक्खा था। हवा बिल्कुल बंद थी, मानो इन्द्र देवता ने उसे भी बंदी कर लिया था। गरमी के मारे बुरा हाल था। सुमित्रा ने चौका बर्तन कर लिया था। बच्चन और मुन्ने अभी स्कूल से न लौटे थे। केवल गिरिजा मक्खन को साथ लिये निरर्थक बकवाद कर के घर की निस्तब्धता भंग कर रही थी। उसने, जिस दिन से छोटी माँ आई, घर का तिनका हिलाने की भी क़सम खा ली थी। भला अब वह काम को हाथ लगा सकती थी! उसने देख रक्खा था, पड़ोस के शुक्ल जी की बहू अपने सौत के लड़के से कितना काम लेती है। मैंने ज़रा भी काम छुआ और छोटी माँ ने मुझ पर हुक्म चलाया!—सो वह ऐसा अवसर आने ही कब देगी। बच्चन और मुन्ने को भी उसने यही सिखाया था—'देखो रे, छोटी माँ से ज़रा भी न दबना, नहीं तो देख लेना मुन्नीलाल की तरह तुम्हें भी चाकरी बजानी पड़ेगी! जो ज़्यादा चीं-चपड़ करे तो बाबू जी से शिकायत कर देना!" इसलिये उन भक्तों ने भी ऐसा करने की शपथ खाली। किन्तु सुमित्रा ने ऐसा अवसर ही न आने दिया। उसने तो दूसरे ही दिन से घर का राई-रत्ती काम अपने ऊपर ले लिया था। बच्चन और मुन्ने को छोटी माँ की शिकायत करने का अवसर ही न मिला। आगे मिलेगा इसकी भी कोई विशेष सम्भावना न थी। हाँ, गिरिजा ज़रूर ही छोटी माँ पर जासूसी का काम किया करती थी। कुछ बृज बाबू के इशारे से कुछ अपनी इच्छा से। बृज बाबू समझते थे कि सुमित्रा युवती है, सुन्दरी है। यदि उस पर कड़ी निगाह न रक्खूँगा तो यह मेरी अछूती कुल-मर्यादा में बट्टा लगा ही देगी। मनुष्य अपनी न्यूनता का दोष दूसरे के गुणों में आरोपित करके ही शान्त हो पाता है। अपनी प्रौढ़ता को देख कर बृज बाबू के विचार सुमित्रा की ओर से हद से ज़्यादा सन्देही थे। उसकी मामूली सी बातचीत, साधारण से हँसने-बोलने, चलने-फिरने में भी उन्हें लज्जाहीनता की गन्ध आती थी। उसके कहीं बाहर जाने, यहाँ तक कि पीहर जाने की इच्छा प्रकट करने पर भी उन्हें सन्देह का भूत खाने लगता था। गौने के बाद एक ही शहर में रहने पर भी सुमित्रा एक दिन के लिये भी माँ से मिलने न जा सकी। बृज बाबू के पास इसकी बड़ी भारी युक्ति थी—"देखो, घर में सयानी लड़की छोड़ कर जाना अच्छा नहीं और गिरिजा को मैं किसी भी दशा में तुम्हारे घर नहीं भेज सकता।"

गरमी के कारण सुमित्रा का जी उलटा जाता था। आँगन एक तो था ही छोटा, उस पर सामने दुबारी के द्वार पर बृज बाबू ने दोहरा परदा डलवा दिया था। भला हवा आवे तो कहाँ से! ऊपर की छत पर सायबान पड़ा था ज़रूर, लेकिन वह खुला हुआ था, दिन में सुमित्रा का वहाँ जाना बृज बाबू ज़रा भी पसन्द न करते थे। हाँ, नीचे की बैठक में अवश्य ही दो बड़ी खिड़कियाँ और एक बड़ा द्वार था। सुमित्रा काम से निबट कर वहीं आगई। द्वार खोल कर उसने चिक गिरा दी; खिड़कियाँ के परदे गिरा कर उन्हें भी खोल दिया। तब कहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से ज़रा-सी हवा ने आकर उसके जलते मस्तक पर सान्त्वना का सूखा-सा हाथ फेरा। गिरिजा छोटी माँ को दरवाज़ा खोलते देखकर मक्खन ही को लेकर बैठक में आ गई। उसने देखा, सुमित्रा चिक के पास बैठ कर पंखा झल रही थी। उसे मालूम था कि परसों बाबू जी नई चिक लाने को कहते थे, क्योंकि यह चिक कई जगह से टूट गई थी।

"छोटी माँ, तुम कहाँ बैठ गई?" उस पिता को सिर चढ़ाई बालिका ने घूरते ही सुमित्रा से कहा—"जब नई चिक लग जाय तब यहाँ बैठा करना। देखो सिर के पास से के तीलियाँ टूटी हुई हैं!"

एक तो गरमी की घबराहट, उस पर इस छोटी सी लड़की की—जो रिश्ते से उसकी बेटी लगती थी—इतनी कड़वी आवभगत! सुमित्रा से सहन न हुआ। प्रतिदिन के इस व्यर्थ के सन्देह की चिनगरियाँ उसे पहिले ही जलाये डालती थीं। उसने चिक से मुँह अड़ा लिया और बोली—"बिट्टो, अपनी बिसात से ज्यादा बड़प्पन न छाँटा करो; क्या तुम सब लोग मुझे दम घुटा कर मारना चाहते हो? चिक की दो तीलियाँ टूटी ही हैं तो कौन ग़ज़ब होगया।" और तब वह मुँह फेर कर ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगी। भय और क्रोध से उसका शरीर काँप रहा था। वह सोच रही थी कि आज खैर नहीं। यह लड़की उनसे जाने क्या-क्या कहती रहेगी! मेरी ज़ुबान से क्या न क्या निकल गया। आग लगे मेरी इस हवा ख़ोरी में! उसने दूसरे ही मिनिट द्वार बन्द करके कुंडी चढ़ा दी और उठकर भीतर जाने लगी। गिरिजा उस समय लाल-लाल आँखें किये नागिन की भाँति फुफकारें छोड़ रही थी। आख़िर थी तो बाप की बेटी न! सुमित्रा ने उसका यह भाव लक्ष्य किया तो उसे भी ज़िद सी चढ़ आई—मरूँगी तो आज भी और दो दिन बाद भी। घुट-घुट कर क्यों मरूँ? इस कल की लड़की के डर से अब क्या गड्ढे में घुस कर रहा करूँ? कितने प्यार से रखती हूँ, अपने मुँह का कौर तक खिलाने को तैयार रहती हूँ, फिर भी...! बात यह है कि मेरे जले भाग्य में तो जलना लिखा है सो जलूँगी। उसने फिर द्वार खोल लिया, और लगभग घंटा भर वहीं बैठ कर बच्चन और मुन्ने के आने पर उठकर भीतर गई।

उस दिन फिर सन्ध्या को उस पर जैसी बीती उसे न लिखना ही अच्छा। इतना ही जान लेना काफ़ी होगा कि बृज बाबू की फेंक कर मारी हुई निगाली से उसकी बाईं भौंह के ऊपर जन्म भर के लिये एक आड़ी लकीर बन गई।

... ...

दशहरा आने वाला था, और बृज बाबू को मानो बुख़ार-सा चढ़ता जा रहा था। पहिले वे हर साल स्त्री और बच्चों को राम बरात और भरत-मिलाप का जुलूस दिखाने ले जाते थे; लेकिन इस बार कैसा होगा, इसी चिन्ता ने उन्हें परेशान कर रक्खा था। इस बार तो पत्नी के स्थान पर सुमित्रा थी—गोरी, सुन्दरी, युवती और पढ़ी लिखी! भला वे उसे इतनी भीड़ में जुलूसी दिखाने ले जायेंगे? कितना ही घूँघट काढ़े रहे, देखने के लिये तो मुँह खोले होगी! ख़ाली बच्चों को ही ले जाँय तो उसे अकेली घर कैसे छोड़ें, इतनी बड़ी बेवकूफ़ी! चार घंटे युवती पत्नी और वह भी बुड्ढे की पत्नी अकेली रहे! अजी राम भजो, बृज बाबू ऐसे पागल नहीं हैं। अन्त को उन्होंने तय किया कि तबियत ख़राब होने का बहाना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करके लेटे रहेंगे, किसी को भी न ले जाना पड़ेगा, इस बार की राम का बरात न देखो तो क्या हुआ, इज्जत बचाने के लिये सब कुछ करना पड़ता है...।

... ...

आज राम-बरात थी। बृज बाबू आफ़िस गये हुये थे। बच्चन और मुन्ने बरात देखने की .खुशी में आज स्कूल न जाकर घर पर ही ऊधम मचा रहे थे। गिरिजा ने भी आज सुमित्रा के साथ बर्तन धुलवा लिये। सन्ध्या के भोजन की तैयारी कर दी और फिर दौड़-दौड़ कर भाइयों के कपड़े निकाल-निकाल कर खूँटियों पर सजाने लगी। वह अब बहुत कुछ सीधी हो गई थी। सुमित्रा के आदर और दुलार भरे व्यवहार ने उसे उसका मित्र बना दिया था। वह अब उसके विरुद्ध बाबू जी से एक शब्द भी न कहती थी। सुमित्रा ने उसकी सभी इच्छायें—जो वह पूरी कर सकती थी, करीं। गिरिजा को पढ़ने से रुचि थी। वह तीसरी तक स्कूल में पढ़ी थी, फिर उसकी माँ ने घर बिठा लिया, क्योंकि पाठशाला घर से दूर पड़ती थी और ग्यारह वर्ष की सयानी लड़की को, कलियुग के इस बुरे ज़माने में वे इतनी दूर न भेज सकती थीं। सुमित्रा ने उसे रामायण पढ़ाई थी, अब महाभारत शुरू कराई थी। उसकी इच्छा तो उसे फिर से स्कूल भेजने की थी; लेकिन बृज बाबू राज़ी ही न हुये। इसके अतिरिक्त अपने सभी गहने-कपड़े वह हर छोटे-बड़े त्योहार पर गिरिजा को लाद देती। काम करने के नाम कभी उसे एक गिलास पानी को भी न कहती। इन्हीं सब बातों ने तीन-चार महीने में ही उस अल्हड़ व हठी बालिका को शान्त बना दिया था।...हाँ सुमित्रा नहीं सुधार सकी तो एक बृज बाबू को, उनमें राई-रत्ती का अन्तर न आया था। उल्टे अब गिरिजा को भी सुमित्रा की हाँ में हाँ मिलाते देख कर उन्हें भय होने लगा था कि कहीं यह मेरी लड़की को भी न बिगाड़ दे!

चार बजे से पहिले ही गिरिजा सज-सजा कर तैयार हो गई। बच्चन, मुन्ने और मक्खन तो उससे भी पहिले नेकर कोट पहिन कर साहब बहादुर बने आँगन में थिरक रहे थे। सिर्फ़ सुमित्रा ने ही न अब तक धोती ही बदली थी और सिर में कंघी की थी। गिरिजा के बहुत कहने पर उसने साबुन से मुँह-हाथ धो लिया था। एक रँगी हुई किनारीदार धोती भी निकाल कर खूँटी पर टाँग दी थी, लेकिन पहिनी नहीं थी। वह बृज बाबू के स्वभाव से परिचित थी। क्या जाने क्या समझें; उलटी खोपड़ी के आदमी ठहरे, कभी सोचें कि बाहर जाने की .खुशी में ऐसी जल्दी तैयार हुई है। मेरे पीछे कहीं बच्चों का जाना भी न रुक जावे। सो उसने धोती न पहिनी। गिरिजा बड़ी देर तक छोटी माँ से इस बात पर रूठी रही। जब सुमित्रा ने उसके गले में बाहें डाल कर प्यार से बताया—"बिट्टो, तुम तो जानती ही हो अपने बाबू जी को। जब वे कह देंगे तब बदल लूँगी, समझीं!" तब कहीं जाकर उसका मुँह सीधा हुआ था।

बच्चन बार-बार द्वार पर जाकर बाबू जी को देखता—आते हैं या नहीं? सवा चार बजे और सदा की भाँति तङ्ग मोरी का लट्ठे का पाजामा, बंद गले का काला कोट और छोटे बाढ़ की फ़ेल्ट कैप लगाये बृज बाबू आते दिखाई दिये। "बाबू जी आगये, बाबू जी आगये!" बच्चन नाचता हुआ भीतर भागा। मुन्ने और मक्खन भी दौड़ कर दरवाज़े पर आगये। पर यह क्या? उनके बाबू जी आज

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीधे घर न आकर संतू बाबू की बैठक में घुस गये। वहाँ ताश की बैठक जमी हुई थी। लगभग एक घंटे और तपस्या करने पर बच्चों को फिर बृज बाबू के दर्शन हुये। वे घर में आगये; सुमित्रा ने छतरी और कोट लेकर खूँटी पर टाँगा। बूट उतार देने पर उन्हें भी कोने में सरका दिया और फिर भीतर से दालमोट की तश्तरी उठाने चली गई। बृज बाबू ने एक नज़र में ही देख लिया कि लड़के एकदम लेफ्ट-राइट से दुरुस्त होकर मार्च के लिये तैयार खड़े हैं। अब ? इधर पेट की आँतें भूख से कुल-बुला रही थीं, तबियत की ख़राबी का बहाना करें तो और दो घंटे तपस्या करनी पड़ेगी, तब कहीं जाकर खिचड़ी तैयार होगी ! लेकिन करना ही पड़ेगा, इस ज़माने में इज़्ज़त बचाना कितना मुशकिल है, इसे शरीफ़ आदमी ही जान सकते हैं। वे आँखें बंद कर के पलङ्ग पर दराज़ हो गये।

"बाबू जी !" गिरिजा ने आकर कहा—"जल्दी से खा-पी कर तैयार हो जाओ न; नहीं तो फिर धज्जों पर बड़ी भीड़ हो जाती है, सो बरात देखने में बड़ी मुशकिल पड़ती है।"

"नहीं बिट्टो, मेरे सिर में बड़ा दर्द है, मैं नहीं खाऊँगा।"

गिरिजा एकदम अबोध न थी। वह बचन से सुन चुकी थी कि बाबू जी घंटे भर पड़ोसी संतू बाबू के घर ताश खेल कर आ रहे हैं। दर्द-वर्द कहीं नहीं, यह सब न ले जाने के बहाने हैं ! वह रुआँसी-सी होकर रसोई घर में गई और सुमित्रा से बोली—"छोटी माँ, बाबू जी का इरादा तो जाने का नहीं दीखता !"

"क्यों ?" सुमित्रा ने गिरिजा की आँखें गीली देख कर जल्दी से पूछा।

"जाने क्यों ? कहते हैं सिर में दर्द है। पर मैं जानती हूँ, वे झूठ बोल रहे हैं। अभी अभी तो घन्टा भर सन्तू चाचा के यहाँ ताश खेल कर आ रहे हैं।"

"नहीं बिट्टो, दर्द होते क्या देर लगती है, शायद होने लगा हो।"

"अजी नहीं, यह सब न ले जाने के बहाने हैं !" भुनभुनाती हुई गिरिजा ऊपर चली गई। सुमित्रा भी समझ गई यह सब झूठ है, सिर्फ़ उसके ही कारण वे बच्चों को भी नहीं ले जाते। कहते हैं—मसलने से तो चींटी भी काट लेती है;—सुमित्रा के दुखते हृदय का ज्वालामुखी बार बार की ठेस पा कर फूट उठता था। जाने कैसे वह उस लपट के धुँये को भीतर ही भीतर पी जाती थी। इसके अतिरिक्त उपाय ही क्या था ? जो पुरुष एक साधारण सी बात पर हुक्के की निगाली मार सकता है वह यदि अधिक क्रोधित होकर जलती चिलम फेंक मारे तो क्या आश्चर्य ! इसीलिये सुमित्रा भीतर ही भीतर ख़ून का सा घूँट पीकर रह जाती है। किन्तु आज बच्चों का सूखा मुख देख कर उसे कुछ तेज़ी आगई। वह दालान में पहुँची और बृज बाबू को हिला कर बोली—"उठो न, समोसे ठन्डे हुये जाते हैं। उधर बच्चे अलग जाने की आफ़त उठाये हुए हैं !"

"मैंने एक बार कह दिया मेरे सिर में दर्द है, बोलो मत !" बृज बाबू ने बालात् स्वर को नाक में चढ़ाकर गुनगुन करके उत्तर दिया।

सुमित्रा एक मिनिट चुप रही, फिर बोली—"लाओ अमृतधारा लगा दूँ; चाय बना दूँ, पीने से तबियत साफ़ होजायगी। अब ज़रा से दर्द के लिये बच्चों का त्योहरा क्यों मिट्टी करते हो ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'ओ हो रे बच्चों के त्योहार!' बृज बाबू ने मन ही मन कहा—'सब समझता हूँ, यह चालबाजी किसी और को दिखाना! यूँ क्यों नहीं कहती कि मेरी ही तबियत सैर करने को मचल रही है!' उन्होंने और भी दृढ़ स्वर से उत्तर दिया—"चाय-वाय मत बनाना, इससे तबियत और भी ज्यादा खराब हो जायगी। मैं आज बरात दिखाने न जा सकूँगा।"

कितना सफ़ेद झूठ बोल रहे हैं! सुमित्रा कुढ़ गई। इन्होंने मुझे जाने क्या समझ रक्खा है, जाने क्या देखा है, जिसमें दिन रात यूँ चौकी पहरे लगाते रहते हैं!

"जाओ बच्चों के कपड़े उतारो; खड़ी क्यों हो?" बृज बाबू ने उसे चुप देख कर कहा—"बिना मुझसे पूछे तैयार क्यों कर दिया था?"

अब सुमित्रा फूट पड़ी—"तैयार करने वाली मैं कौन हूँ; हर साल ले जाते थे इससे बच्चे आप ही तैयार हो गये। उन बेचारों को क्या खबर थी कि मुझ जनमजली के कारण उन्हें भी घरमें सड़ना पड़ेगा!"

"क्या बक रही हो, कुछ दिमाग़ खराब हो रहा है?" बृज बाबू ने विरक्त होकर तीव्र स्वर से कहा। भूखे मनुष्य का टेम्परेचर कुछ तो स्वाभाविक ही तेज़ रहता है, उस पर यदि उसके दोष की ओर इंगित कर दो तो फिर तो कुछ कहना ही नहीं! सुमित्रा के शब्दों ने उनका पारा एकदम ऊपर पहुँचा दिया।

फिर भी सुमित्रा चुप नहीं हुई, बोली—"क्या जाने किसका दिमाग़ खराब हो रहा है। अरे, मेरे कारण उनका हृदय भी क्यों दुखाते हो, उन्हें ले जाओ, मैं घर रह जाऊँगी।"

गज़ब! बृज बाबू को जिस बात का भय था, वही हुई। 'सुमित्रा के। अकेले छोड़ना पड़ेगा'—ऐसे पागल वे नहीं हैं। बात खतम करने के इरादे से उन्होंने डाँट कर कहा—"बक-बक न करो, किसी की तबियत भी देखती हो या अपनी ही हाँके जाती हो! इधर गिरिजा सयानी हुई, अब उसे कहाँ ले जाऊँ और बिना जाये वह मानेगी नहीं!" कहते-कहते वे मुँह फेर कर लेट गये।

सुमित्रा बच्चा न थी। गिरिजा सयानी हुई है, या मैं युवती हूँ, यह वह खूब जानती थी। किन्तु बृज बाबू की इन घूमती-फिरती बातों ने उसे सिर से पैर तक जला दिया। वह एक क्षण को अपनी स्थिति तक भूल गई, तन कर पूरी आवाज़ से उसने उत्तर दिया—"यूँ चबा कर बातें क्यों करते हो? साफ़ क्यों नहीं कहते कि मुझे तेरा ऐतबार नहीं; इसे तो मैं भी जानती हूँ, न हो बाहर से ताला डाल कर चले जाना।"

बृज बाबू एकदम उठ कर बैठ गये। सुमित्रा कभी इतना ऊँचा भी बोल सकती है, इसका उन्हें कभी विचार भी न था। मेरे सामने यह हाल है, पीछे तो यह न जाने कितना घर सिर पर रखती होगी! उनकी समस्त देह क्रोध से काँपने लगी—"अपनी ज़ुबान बन्द कर ले, मैं कहता हूँ, अब कभी इतने ज़ोर से बोली तो जीभ खींच लूँगा!"—उन्होंने अस्वाभाविक रूप से गला फाड़ कर कहा—"तेरी इतनी हिम्मत...!"

"क्यों हिम्मत को क्या हुआ, क्या कहीं नाक कटाई है?" सुमित्रा ने उसी तान से उत्तर दिया और चल पड़ी।

"ठहर तेरी हिम्मत देखूँ....." और बृज बाबू के एक ही धक्के में सुमित्रा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आँगन के फ़र्श पर गिर पड़ी। उसका माथा बाईं ओर से फूट गया।

लेकिन रात के समय जब गिरिजा, सिर में पट्टी बाँधे हुई अपनी छोटी माँ के सिरहाने बैठी आँसू बहा रही थी तो उसने उसे चुप कर के कहा—"चिट्टी, देख बाहर किसी से यह बात न कहना, कोई पूछे तो कह दीजियो कि गुसलख़ाने में पैर रपट गया था; समझीं ?—"

... ...

देहली बदल कर आने पर बृज बाबू को सब से बड़ी असुविधा जो हुई वह मकान की थी। मकान उन्हें अच्छा मिल गया था किन्तु वह एक बड़ी हवेली में था, जिसके ऊपर के दोनों खंडों में आठ-आठ, दस-दस रुपये के कई किरायेदार रहते थे और उनके सामने वाले कमरे में रहता था एक कालेज का लड़का। पहिले ही दिन जब वे आफ़िस जाने को निकले तो देखा, वह युवक बाहर के बरामदे में आरामकुर्सी डाले कोई पुस्तक पढ़ रहा था। वे थोड़ी देर उसे देखते रहे फिर आप ही आप बड़-बड़ाने लगे—"न साहब, ऐसे तो काम न चलेगा ! इस तरह तो एक दिन भी गुज़ारा होना कठिन है ! कोई भला आदमी इतनी बेपरदगी में कैसे रहेगा ?"

"आप किससे कह रहे हैं, महाशय !" उस लड़के ने अपने कानों में लगातार भन-भनाहट सुनकर, पुस्तक से मुँह उठा कर पूछा।

"आपसे ही कहता हूँ।"

युवक बेचारा प्रश्न-सूचक दृष्टि से उन्हें देखने लगा। बृज बाबू उसे यूँ ताकते देख कर रूखे स्वर से बोले—"देखता हूँ—आपके स्त्री-बच्चे तो हैं नहीं।"

"नहीं साहब, यह झगड़ा मैंने अभी नहीं पाला है।" एक अपरिचित के मुख से एकदम यह बात सुन कर युवक को कुछ हँसी आगई—कुछ बुरा भी लगा।

"वही तो ! ऐसी हालत में आपका यूँ बरामदे में बैठना तो न हो सकेगा।"

"वाह जनाब, आप कहते क्या हैं ? अपने ही दालान में क्यों न बैठ पाऊँगा ? यही तो ज़रा सी ख़ुली जगह है, नहीं तो कमरे के अन्दर हर समय रहकर कोई कैसे ज़िन्दा रह सकता है ?"

"सो सब मैं नहीं जानता। मैं कच्ची गृहस्थी वाला आदमी हूँ, मेरे घर में छोटी उमर की बहू-बेटी हैं। इस तरह आप दिन भर हमारे दरवाज़े की सीध में रहेंगे तो कैसे काम चलेगा ?"

"आप अपने दरवाज़े पर परदा डाल लीजिये, मुझे इसमें कोई आपत्ति न होगी।" कह कर वह युवक फिर पुस्तक पढ़ने लगा।

उसे बृज बाबू के इस अभद्र व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया।

"यह ख़ूब सुनाई, परदा डाल लो ! इससे लाभ ही क्या होगा ?"

"तो आप चाहते क्या हैं ?" उस युवक ने चिढ़ कर कहा—"मैं तो यहाँ बैठना छोड़ नहीं सकता। आपको परदे का इतना ही ख़याल था तो किसी अकेले घर को लेते !"

"वाह, यह ख़ूब रही ! जो किसी की इतनी हैसियत न हो तो क्या करे...?"

"इतना परदेदार न रहे।" युवक झल्ला कर बोला; फिर अपनी पुस्तक बंद करके कमरे में जाता जाता कहने लगा—"मुझे तो यहाँ रहते दो साल होगये, आज तक किसी ने मेरे विषय में ऐसी शिकायत नहीं की,—आपने एक ही दिन में क्या देख लिया !"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बृज बाबू अभी कुछ देर और भिड़े रहते, पर आफ़िस जाने की देर हो रही थी, वे बड़बड़ाते हुये सीढ़ियाँ उतर कर चले गये। युवक फिर आकर पुस्तक पढ़ने लगा।

सुमित्रा ने जो बृज बाबू को बाहर बोलते सुना तो किवाड़ों की दरार से झाँकने लगी। युवक का स्वर कुछ परिचित सा लगा। वह सोचने लगी, इसका मुख दीख जाय तो पता लगे कि कौन है। वह युवक जब उठ कर भीतर गया था तो उस का मुख दरार की सीध में आ गया। सुमित्रा देखते ही पहिचान गई। अरे! यह तो गिरीश है!

सुमेधा जीजी की ननद का देवर। तीन बरस में कितना बदल गया! तब तो सींक सलाई सा था; अब तो देही भी भर गई है, रंग भी खुल गया है। उसका मन भीतर ही भीतर गिरीश से बातें करने को छटपटाने लगा। जीजी का हाल-चाल जाने कितने दिन हो गये,—डेढ़ बरस से तो न अम्माँ, न चाची, न जीजी, किसी की भी खबर नहीं मिली। पर कैसे पूछूँ, ये तो वैसे ही उन पर तोप-बन्दूक़ बने गरज रहे हैं। वह किसी भाँति मन मार कर वहाँ से हट गई। अपनी परवशता पर, आज जैसा रोना, आज जैसा रोष उसे कभी न आया था। उसकी इच्छा हो रही थी कि इस परदे को, इस कुल-मर्यादा को, इस खान-दान की इज्ज़त को, जिसने इस डेढ़ सालों में ही उसे जला कर हड्डियों का ढाँचा बना दिया है, दियासलाई दिखाये! पर हाय री हिन्दू-नारी, कैसे करेगी तू यह सब? वह चुपचाप रसोई में जाकर बर्तन समेटने लगी। बच्चन और मुन्ने स्कूल चले गये थे। गिरिजा भी अपनी पुस्तकें बाँध कर बोली—"तो छोटी माँ—जाऊँ?"

"हाँ जाओ।" सुमित्रा ने गीली धोती अलगनी पर फैलाते हुये उत्तर दिया। बात यह थी कि इस हवेली के निचले खंड में लड़कियों की एक मिडिल पाठशाला थी। सुमित्रा ने गिरिजा के पढ़ने की उत्कंठा देखकर मुश्किलों से बृज बाबू को उसे स्कूल भेजने के लिये मना लिया था। बृज बाबू ने भी यह सोच कर कि आजकल लड़के वाले लड़कियों की पढ़ाई भी पूछते हैं—हाँ भर दी। गिरिजा चली गई। मक्खन 'जीजी-जीजी' करता उसके पीछे चला, उसे कई दिन से थोड़ा-थोड़ा बुख़ार आता था। सुमित्रा घबराने लगी, गरमी के दिन हैं, लू चलती है, और यह नीचे जाकर सड़क पर खेलेगा। उसने उसे मना किया, किन्तु वह भाग ही गया। सुमित्रा सोचने लगी, इस पाजी को बुलाने कैसे जाऊँ? यह मैली-सी धोती पहिने घूँघट काढ़ कर बाहर कैसे निकलूँ? सामने से गिरीश बैठा है। वह यदि पहिचान ले तो घूँघट देखकर क्या कहेगा? वह कितना हँसोड़ है, इसे वह जीजी के घर पर देख चुकी थी। अन्त को वह घूँघट बिना ही मक्खन को बुलाने चली, द्वार खोलते ही उसने देखा, चटोरा मक्खन गिरीश के पास खड़ा हुआ उसकी दी हुई लीचियों को साफ़ कर रहा था और गिरीश उससे पूछ रहा था—"जो अभी दफ़्तर गये वे तुम्हारे बाबू जी हैं?"

सुमित्रा अब रुक न सकी। जीभ चाँपते-चाँपते भी उसके मुख से निकल ही गया—"गिरीश!"

गिरीश चौंक पड़ा, स्वर परिचित-सा था। उसने देखा, मैली-सी धोती पहिने, लम्बे क़द की एक दुबली-पतली युवती द्वार खोले खड़ी थी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ऐसे क्या देख रहे हो! क्या तीन ही बरस में सुमित्रा को भूल गये!"

"अरे आप हैं!" गिरीश जैसे आसमान से गिर पड़ा। "वाह, भला तीन वर्ष में ही आप इतनी बदल जायेंगी, इसका तो मुझे ख़याल भी नहीं था।" वह कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया।

"सच में ही क्या मैं बदल गई?" सुमित्रा ने इधर-उधर देखते हुये पूछा।

"अरे आप में तो ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ पड़ गया। एकदम लकड़ी ही हो गई! रंग कैसा मैला हो गया। जैसे किसी ने स्याही फेर दी हो!" गिरीश का दिमाग़ चक्कर खा रहा था—क्या सुमित्रा उन्हीं काले कोट वाले महाशय की पत्नी हैं? सुना तो उसने था कि सुमित्रा दुहेजू को ब्याही गई है; किन्तु वह इस दशा में होगी, इसकी कल्पना उसने कभी न की थी।

"होगा।" सुमित्रा बात फेर गई, "जीजी के घर की कुछ ख़बर है?"

"हाँ भाभी आज कल वहीं हैं; उनका पत्र आया था; लिखा था, सब अच्छी तरह हैं।" गिरीश ने अपना विस्मय दबाते हुये स्वाभाविक कंठ से उत्तर दिया।

सुमित्रा अब चुप हो गई। बातें करने को जैसे उसका दम फूल रहा था। हाय, ननद के ब्याह में जब मैं गई थी तो गिरीश के साथ कितनी हँसी करती थी! दूल्हे की जगह भूल से इसके बूट छिपा देने पर सबने उसका कैसा मज़ाक उड़ाया था! यही सब बातें उसे याद आने लगीं, किन्तु बृज बाबू! उन्हें कैसे समझायेगी? कैसे विश्वास दिलायेगी? गिरीश और कुछ कहने को हुआ पर मक्खन ने उसकी बात ही भूला दी। वह ज़ोर से बोला—"छोटी माँ पंडित जी आते हैं!".

सुमित्रा पड़ोसी पंडित के आने का समाचार सुनते ही झट से भीतर चली गई। गिरीश सोचता ही रह गया। 'छोटी माँ!' तो सुमित्रा इन्हीं खुरदरे की पत्नी हैं।

मक्खन लीचियाँ खाकर अब अन्दर गया तो सुमित्रा ने उसे बताया—"वे सामने वाले बाबू तेरे मामा लगते हैं समझा! पर देख, अपने बाबू जी से यह न कहना कि मैं उससे बात करती थी!" मक्खन ने वायदा तो कर लिया, घूस में दिया हुआ पैसा भी चट कर गया; किन्तु वायदा उससे पूरा न हुआ। सन्ध्या को उसने बातों-बातों में बृज बाबू के सामने सब कुछ उगल दिया। यद्यपि अपनी समझ में उसने कोई भी बात न बताई थी, "क्यों जी!"—बृज बाबू के मुँह का कौर गले में ही अटक गया।—"लगाई न तुमने वही बात! सामने वाले छोकरे से बोलने को तुम्हें किसने कहा था...?"

सुमित्रा काँप गई, उसमें अब मार खाने का दम न था; धीरे-धीरे बोली—"वह एक रिश्ते से मेरा भाई लगता है, बड़ी जीजी की ननद का देवर है, सो जीजी की ख़बर पूछने की दो बातें की थीं।"

"कहाँ का नाता जोड़ा है! जीजी की ननद का देवर! क्या चिट्ठी लिख कर ख़बर नहीं मिल सकती थी?"

बृज बाबू इस समय यह भूल ही गये कि उन्होंने स्वयं ही उसे कहीं भी पत्र डालने की मनाही कर रक्खी है।

"कोई जरूरत नहीं बात करने की, कालेज के लड़के सुसरे सारे बदमाश होते हैं!..."

सुमित्रा चुप हो गई। पर उसका हृदय? उसका हृदय विद्रोह के बादल उठाये हुये अन्दर ही अन्दर बरस रहा था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कई दिन बीत गये। सुमित्रा अब बिल-कुल बाहर न झाँकती थी। उसे भय था, कभी गिरीश उसे देखकर कोई प्रश्न न कर बैठे, फिर तो बोलना ही पड़ेगा। बच्चन और मुन्ने के द्वारा उसे उसकी बहुत सी बातें ज्ञात हो गई थीं। उसके पिता भी मर गये हैं, माँ तो पहिले ही न थी; सुन कर उसे रुलाई छूटने लगी। यह भी उसने दूसरे ही दिन सुन लिया कि वह खर्च की तंगी के कारण ही होस्टल छोड़ कर इस मकान में रहने लगा है। वह अपने ही हाथ से दोनों समय चाय बनाता है, सवेरे तो चाय और डबल रोटी खाकर ही कालेज चला जाता है, सन्ध्या को होटल में भोजन कर लेता है। यह सब देख-सुनकर सुमित्रा का हृदय भीतर ही भीतर चुटकियाँ-सी लेने लगता। उसका वश होता तो वह उसे एक दिन भी चुल्हा न जलाने देती। घर से ही चाय बना कर भेज देती; किन्तु वह परवश थी। इतनी कड़ाई पर भी वह कभी-कभी गिरिजा के हाथ, एक आध अच्छी वस्तु बनाने पर, चुपके से भेज ही देती। गिरीश चार-पाँच ही दिनों में समझ गया था। उसकी इच्छा होती थी सुमित्रा से एक बार पूछे कि वह इस दरबे में कैसे रहती हैं? किन्तु बृज बाबू का स्वरूप याद करके उसे साहस ही न होता था। यद्यपि सुमित्रा ने अपने मुख से कभी बृज बाबू के विषय में एक बात भी न की थी फिर भी गिरीश को सब कुछ मालूम होगया था। इसी लज्जा के कारण वह और भी उसके सामने न पड़ती थी। वह नहीं चाहती थी कि, कोई उसकी दशा पर तरस खाकर उससे सहानुभूति प्रकट करे। उसके लिये यह एकदम असह्य था।

महीने का अन्तिम सनीचर था। बच्चन और मुन्ने जल्दी ही स्कूल से लौट आये। घर में घुसते ही बच्चन बोला—"छोटी माँ! मामा जी को तो बड़ा तेज़ बुख़ार चढ़ रहा है!"

"सच!" सुमित्रा व्यग्र हो गई।

"हाँ, वे मुझ से चुल्हा जलाने को कह रहे थे। मगर मुझ से जला ही नहीं! शायद चाय बनाते।"

सुमित्रा से रहा न गया। उस मातृपितृ-हीन युवक के लिये उसकी ममता उमड़ पड़ी। उसका भाई भी जो होते ही मर गया था, यदि जीता होता तो इतना ही बड़ा होता। उसने जल्दी-जल्दी चाय बनाई और बच्चन के द्वारा भिजवा दी। वह दिन बीत गया। दूसरे दिन भी बच्चन ने बताया कि उनका बुख़ार नहीं उतरा। रविवार होने के कारण सुमित्रा भीतर ही भीतर पिंजरे में बंद पक्षी की भाँति फड़-फड़ा कर रह गई। किन्तु तीसरे दिन भी जब बच्चन ने वही बात दोहराई तो वह तड़प उठी।

"मेरे भैया, तू मेरे साथ ज़रा चल तो सही, मैं भी देख आऊँ!"

"चलो, मगर बाबू जी न ग़ुस्सा हों?"

"नहीं होंगे, तू उन से न कहियो!"

"तो जल्दी चलो, चार बजने वाले हैं।"

वह उसे साथ लेकर ही गिरीश के कमरे में घुसी। गिरीश बुख़ार की तेज़ी में बुत-सा पड़ा था। सुमित्रा ने पुकारा—"गिरीश! गिरीश! ऐ गिरीश!"

किन्तु गिरीश हिला तक नहीं। न उसने आँखें ही खोलीं। उसका लाल-लाल मुख और विकृत भाव देखकर सुमित्रा सोचने लगी—अब?

"बच्चन!"

"हाँ।"

"भैया, नीचे से गिरिजा को बुला ले। वह मेरे साथ रहेगी। और तू दौड़ कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किसी डाक्टर को बुला ला, जाइयो तो मेरे बच्चन !" बच्चन एक साँस में नीचे दौड़ा।

और सुमित्रा सैकड़ों देवी-देवता मनाती हुई द्वार के पास खड़ी रही।

... ...

"हरामज़ादी ! तुझसे किसने कहा था कि तू वहाँ जाय ?" बृज बाबू ने उसका हाथ मरोड़ कर पूछा—"वह तेरा कौन लगता है...भाई...बाप...या कोई और ? तू समझती है कि मैं कुछ नहीं जानता ? मेरे तीन दरजन आँखें हैं ! तेरी नस-नस पहिचानता हूँ ! तू वहाँ क्यों गई थी ?" सुमित्रा दर्द से पीली पड़ रही थी। उसने दाँतों से होंठ दबा कर अपनी निकलती हुई चीख़ को रोका और हाथ छुड़ाने की चेष्टा की।

"बोल, जल्दी बोल, नहीं आज तेरे हाथ पैर तोड़ कर रक्खूँगा !" बृज बाबू ने उसे हाथ छुड़ाते देख कर दो घूँसे जमाते हुए कहा।

"हाय री अम्माँ !" सुमित्रा द्वार के बीच में ही 'धम्म' से बैठ गई।...

"अब अम्माँ-अम्माँ करती है !"

"बाबू जी, क्या करते हो ?..." गिरिजा ने बृज बाबू का हाथ खींचते हुये कहा—"मामा को तेज़ बुख़ार चढ़ा हुआ है। इसी लिये तो छोटी माँ मुझे साथ लेकर उन्हें देखने गई थीं।—तुम—!"

"तू चुप रह, नहीं तुझे भी ठीक बना दूँगा !"

"बाबू जी !"

"तू फिर बोली ?" बृज बाबू ने उसे परे धकेल दिया।

"क्यों जी, ऐ महारानी सीता रानी ! आप तो कहती थीं कि मैं उससे बात तक नहीं करती ! और आज वहाँ क्या करने गई थीं ? शायद अब बुड्ढे से मन ऊब गया...क्यों ?"

सुमित्रा तड़प उठी—"मुँह सम्हाल कर बोलो ! उसके बारे में कच्ची-पक्की बात कहोगे तो ठीक न होगा !" नारी के सतीत्व गौरव से सुमित्रा की देह भर उठी, "मेरे लिये तो वह भाई से बढ़ कर है, तुम चाहे जो समझो !"

"ओ हो, कितना बुरा लगा !—जहाँ झील होगी वहीं तो पानी भरेगा !" कहते कहते बृज बाबू ने एक, दो, तीन, चार... जाने कितने घूँसे उस अत्याचारों से मुरझाई हुई कुचली हुई कुसुम कली सी सुमित्रा पर बरसा डाले !

... ...

दो महीने बीत गये। सुमित्रा ने उस दिन से जो चारपाई पकड़ी सो उठी ही नहीं। उस दिन की मार से उसका तीन मास का गर्भ स्राव हो गया था। बृज बाबू ने चिकित्सा न कराई हो सो बात भी नहीं। किन्तु वह न उठी—न उठी ! वह उठना चाहती भी नहीं थी। वह तो गौने की रात से ही दिन रात यही मनाती थी कि भगवान् ! मेरे परदे ढक ले। अपने बाबू जी की इज़्ज़त सम्हाले-सम्हाले इस दुनियाँ से चल बसूँ, इनकी मर्यादा बनी रहे। अब भी वह सोचती थी। हाँ बच्चों का मोह उसे कभी-कभी विकल कर देता था। गिरिजा ने छोटी माँ की सेवा में दिन रात एक कर रक्खा था। वह रात-रात भर उसके सिरहाने बैठी रहती, दिन-दिन भर उसके पास से न हिलती। लेकिन सुमित्रा की दशा गिरती जा रही थी। गिरीश ने तो उस लोमहर्षक घटना के दूसरे ही दिन अपनी बीमार देह लेकर ही वह मकान छोड़ दिया था। मनुष्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इतना पशु हो सकता है, अपनी स्त्री पर इतना अत्याचार कर सकता है—इसे उस कल्पना के संसार में उड़ते हुये अल्हड़ भावुक युवक ने बृज बाबू को देख कर ही विश्वास किया। फिर कई बार वह चुपके से नीचे सड़क पर ही बचन से सुमित्रा का समाचार पूछ गया किन्तु भीतर जाने का उसे साहस ही न हुआ।

... ...

गिरिजा ने सुमित्रा की दशा दिनों दिन ख़राब देखकर एक दिन बृज बाबू से कहा—"बाबूजी, छोटी माँ को उनकी माँ के पास ही भेज दो, शायद वहाँ ठीक हो जायँ।

बृज बाबू भी उसकी बिगड़ती हुई हालत देखकर, अपनी मर्यादा को ख़तरे में डाल कर भी, सुमित्रा को मुरादाबाद भेज देने का विचार कर रहे थे। बोले—"सोच तो मैं भी यही रहा हूँ, अच्छा कल साहब से छुट्टी को कहूँगा।"

"नहीं-नहीं!" सुमित्रा ने मानो सोते से जग कर क्षीण स्वर में कहा—"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे कहीं न भेजो, जो होना हो सो यहीं हो ले।"

"क्या फ़िजूल की बातें सोचती हो; तुम ठीक हो जाओगी।"

"न-न, भगवान् मुझे ठीक ही कर देंगे, तुम डरो मत! तुम तो यही प्रार्थना करो कि इज्जत लेकर मैं चुपके से उनके पास पहुँच जाऊँ।"

बृज बाबू चुप रह गये।...

इसके कोई एक पखवारे बाद, सुमित्रा एक दिन चुपके से बृज बाबू की मर्यादा को गले बाँधे हुये न जाने कहाँ उड़ गई!

अनर्थ

('कमल')

पात्रों के जीवन की जिन घटनाओं को लेकर यह कहानी लिखी गई है, वे घटनायें ई० १९३८ की १३ मई से १८ जून तक हुई थीं।

ये तारीखें देकर मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि, किसी भी मनुष्य के जीवन में ये थोड़े से दिन ही सब से भारी परिवर्त्तन लाने के लिये काफ़ी हैं। परिवर्त्तन की शीघ्रता शायद आप लोगों के मन में सन्देह ला सकती है, पर यह जान रखिये कि, दुनिया में कोई भी बात असंभव नहीं है।

समय—१३ मई, संध्या। जगह—बम्बई के 'हेङ्गिङ्ग' गार्डन का पूरब का कोना। पात्र और पात्री,—वे केवल दो हैं।

१९३७ की अप्रैल से १९३८ के जून तक अगर आप किसी भी दिन वहाँ जाते तो आप देख पाते कि प्रतिदिन छः बजे के समय एक युवती आकर ठीक उसी जगह एक बेंच पर बैठती है;—अपने सामने एक पुस्तक खोल रखती है, यानी पढ़ने का छल करके बाग़ की सड़क की ओर देखती हुई प्रतीक्षा करती है। कुछ समय के बाद ही एक युवक घूमता-घामता उसी ओर आता है, यानी टहलने का छल करके उसी युवती के निकट आता है। फिर, जैसे सहसा भेंट हो गई है इस भाव से कहता है—"अरे, आप भी आई हैं! मैं ज़रा टहल रहा था...अच्छा हुआ कि आप से भेंट हो गई!"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे इच्छा और प्रयत्न करके ही प्रतिदिन इस तरह एकाएक एक दूसरे से मिलते हैं। फिर, पहिले कालेज की पाठ्य पुस्तकों पर शुरू करके, आसमान में तारे खिलने के साथ ही साथ उनकी बातें इतने केामल पर्दे में उतर आतीं, कि उनके सिवाय वे सब बातें और केाई भी नहीं सुन पाता।

उन दोनों केा मैंने प्रतिदिन देखा है। कभी-कभी उनके पीछे की बेंच पर बैठ कर उनकी बातें तक सुनी हैं; उनकेा पता भी नहीं चला। अगर पता ही चलता, तो उनकी तन्मयता की क़ीमत ही क्या? डेढ़ साल तक देखकर और कुतूहल से खोज करके (समझ रहे हैं कि मुझे क्यों कुतूहल हुआ था? आप केा यह कहानी सुनाकर आनन्द देने के लिये। धन्यवाद नहीं दे रहे है?) उनकी केाई बात मुझ से छिपी नहीं रही।

पर मैं उनके असली नाम और पते प्रकट नहीं कर सकता। आप से मैं एकान्त में कह सकता था, किन्तु जब यह कहानी 'माया' में छप रही है तब काल्पनिक नाम-करण के सिवाय केाई उपाय नहीं देख रहा हूँ।

आजकल चरित्र के अनुसार पात्रों के नाम देने की रिवाज चली है। मुझे भी ऐसा ही करना पड़ेगा।

कवि 'बर्नस' की उग्रता के साथ 'टैगोर' का रहस्यवाद मिला कर जो कविता रचित होगी—युवक में उसी कवित्व का मिश्रण मिलेगा। वह 'इञ्जीनियरिङ्ग' कालेज का एक अच्छा विद्यार्थी है। वह काल्पनिक है। वह आदर्शवादी है। उसके निकट जो भी आये हैं, वे उसे और अन्य साधारणों की तरह दूर नहीं रख सके हैं—उसमें एक सुकुमार आकर्षण है। उसका नाम रख लीजिये—रंजन।

और वह युवती? १९३७ की आधुनिकता उसमें है, पर फिर भी उसके बाल कटे नहीं है। उसकी आधुनिकता के विषय में मैं अनेक दृष्टान्त दे सकता हूँ; पर उन सबों की अन्तिम बात यह है कि, अर्थ-शास्त्र का शेष-पाठ तक हृदयंगम करके वह भविष्य जीवन में बैंकिङ्ग करने की अपेक्षा घर-गृहस्थी की कामना अधिक करती है। एक शब्द में—वह अनादि काल की वही चिरन्त नारी है। उसका नाम रख लीजिये—लीला।

अच्छा! आप मेरी कहानियाँ पढ़ते हैं? इसी लिये ताड़ गये हैं। पर इससे क्या! एक कहानी के नाम दूसरी कहानी में व्यवहार नहीं कर सकता—कहानी-लिखने के क़ानून में तो कहीं भी ऐसा निषेध नहीं है। चरित्र से मेल हो ऐसा नाम ढूँढ़ने जाकर मुझे ये दोनों नाम देने पड़े हैं। हाँ, 'अनर्थ' को आप 'वियोगान्त' का विपरीत कह सकते हैं; पर यह उसका उत्तर नहीं है।

... ...

१३ मई, संध्या के समय, 'हैंगिङ्ग गार्डन' के एक कोने की बेंच पर बैठ कर वे दोनों एक दूसरे की बातों में डूब गये थे।

रंजन कह रहा था, "बस और दो मास, लीला! फिर इम्तहान में जैसी आशा कर रहा हूँ अगर वैसा रिज़ल्ट कर सकूँ, प्रिंसिपल ने कह रक्खा है—कहीं अच्छी नौकरी में मुझे लगा देगा। पर मैं बम्बई के बाहर ही नौकरी लूँगा—यह मैं पहिले से तुम्हें कहे देता हूँ; तब तुम एतराज़ नहीं कर सकोगी। बम्बई से बहुत-बहुत दूर, किसी एक अज्ञात और अनदेखी जगह में जाकर हम लोग गृहस्थी लगायेंगे;

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक छोटा-सा बंगला होगा, उसमें तुम और मैं ..'मार्वलस' होगा! काम से घर लौट करके बरामदे में बैठ कर मैं तुम्हें तुम्हारी प्रिय कविता 'आशा' आवृत्ति करके सुनाऊँगा और तुम मुझे गरम-गरम नमकीन खिलाओगी...'मार्वलस' होगा, क्यों?" (यह अँगरेज़ी शब्द रंजन को बहुत प्रिय है, एक दिन में वह कितनी ही बार इस्तेमाल करता है यह गिन कर कहने के लिये एक सुदक्ष संख्या-विद् की आवश्यकता है।)

क्षण भर के लिये रुक कर उसने फिर कहना शुरू किया, "लेकिन मैं कल्पना में स्वर्ग तो बना रहा हूँ, अन्त में तुम पीछे तो नहीं हट जाओगी? पता नहीं—शायद जब मैं अपना प्रस्ताव जताने के लिये तुम्हारे घर जाऊँगा, तुम्हारे पिता बेहद एतराज़ करना शुरू कर देंगे—और यह नब्बे फ़ी सदी सम्भव है,—और शायद तुम भी एक आज्ञाकारी कन्या की तरह पिता की आज्ञा मान लो! तब तो बड़े चक्कर में पड़ जाऊँगा!"

रंजन की बात सुनकर लीला मुसकराई। उसकी वह मुसकान ही काफ़ी अर्थयुक्त थी; पर वह जानती थी कि रंजन के निकट यह यथेष्ट नहीं है। वह बोली, "अच्छा, अगर ऐसा ही हो, तो तुम एक काम करना। सुनो, मैं तुम्हें एक tip दे रही हूँ।"

"सुनाओ!"

'चुप-चाप मेरे घर से चले जाना—ज़रा भी शोर-गुल न मचाना। पिता सोचेंगे—मामला सहज ही टल गया। चुनाँचे वे बेफ़िक्र हो जायेंगे। फिर, मैं सदा के लिये तो घर में छिपी नहीं रहूँगी—दो-चार दिन के बाद ही टहलने के लिये बाहर जाऊँगी। उस समय मुझ पर निगाह रखना। फिर सुविधानुसार किसी टैक्सी वाले को रिश्वत देकर तैयार रखना; संध्या के समय जब मैं अकेली घर लौटने लगूँ, तब.....समझ गये? तुम से वायदा करती हूँ—मैं रत्ती भर भी शोर न मचाऊँगी।"

लीला की ये बातें सुनकर रंजन हँसता ही रहा—हँसता ही रहा। वह जीवन में इतना कभी नहीं हँसा था।

लीला बोली, 'डर के मारे तुम से मैं छिपी रह सकती हूँ, लेकिन आमने-सामने तुम्हारी ताक़त के मुक़ाबिले में मैं कुछ भी नहीं हूँ। अगर कभी यह ज़रूरत आ पड़े, तो मेरी ये बातें याद रखना।"

हँसते हुये रंजन बोला, "अच्छा, याद रक्खूँगा।"

ऊपरी बात से समझ में आ सकता है कि, उनका वार्त्तालाप अब किस ओर बहता जा रहा है। रिवाज के अनुसार एक दूसरे को प्रेम-वाणियों से आकर्षित करने के वे दिन बहुत पहिले बीत गये हैं—प्रथम हृदय-निवेदन की रंगीन वाक्य-बाहुल्यता की अब आवश्यकता भी नहीं है। इसलिये, यदि उनकी बातें पारिवारिक या गार्हस्थिक पर्याय में उतर आती हैं तो आश्चर्य न कीजिये। केवल वे सब मेरी कहानी के लिये अप्रयोजनीय हैं इस लिये छोड़ दी हैं। कुछ क्षणों के बाद, रंजन की बात से फिर कहानी शुरू हुई।—

"पर वे वास्तव में बहुत अच्छे हैं। वे इतने धनी हैं, फिर भी उनमें कुछ भी घमंड नहीं है। वे मुझ से बहुत स्नेह करते हैं।"

रंजन नृसिंह पटेल परिवार की बात कह रहा है। अगर आप बम्बई के aristocratic समाज की ख़बर रखते हैं तो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस पटेल परिवार का परिचय अवश्य ही नहीं देना पड़ेगा। रंजन उन लोगों के विषय में ही कह रहा है। नृसिंह पटेल से रंजन के पिता का परिचय था; परिचय था यह कहना कुछ ग़लत है,—स्कूल के एक ही दर्जे में पढ़ते थे इस लिये मिस्टर पटेल कृपा करके ठाकुरदास को जानते थे; और इस सिलसिले में रंजन को स्नेह करते हैं। रंजन अक्सर ही उनके घर जाता है।

रंजन के जीवन की सभी बात लीला जानती है; इसलिये वह किसी विषय में फिजूल कुतूहल करके प्रश्न नहीं करती है। लेकिन फिर भी इस पटेल घराने की बात छिड़ते ही उसके चेहरे पर जिज्ञासा का चिह्न प्रकट होता है, और यह उसके अनजान में प्रकट होता है।

रंजन की बात के उत्तर में लीला ने पूछा—"प्रमिला की शादी की बात तुमने कुछ सुनी? सुना था—किसी इङ्गलैण्ड से लौटे हुये डाक्टर से उसकी शादी तय हो गई है।"

प्रमिला का नाम नहीं सुना? नृसिंह पटेल की लड़की प्रमिला का नाम नहीं सुना? बम्बई के कालेजों की रेस्तराँओं में बैठकर चाय पीते हुये जो सब युवक गपशप करते हैं क्या उनसे आपकी जान-पहिचान नहीं है? बम्बई के विद्यार्थी समाज में एक भी ऐसा 'माडर्न' युवक नहीं देखा जो प्रमिला का नाम नहीं जानता हो। प्रत्येक की 'नोट-बुक' में उसकी मोटर का नम्बर लिखा है। वे जानते हैं कि वह दिन और रात में कितनी बार साड़ियाँ बदलती है। प्रमिला जिस दूकान से जूतियाँ खरीदती है, एक दिन जाकर देखना कि उस दूकान के ग्राहक कितने हैं! अनेकों का विचार यह है कि, अगर प्रमिला को दुनिया की सौन्दर्य-प्रतियोगिता में भेजा जाय तो, दूसरे देशों की युवतियाँ मारे लज्जा के उस प्रतियोगिता में नहीं आयेंगी। प्रमिला ऐसी थी।

लीला के सवाल के उत्तर में रंजन ने कहा, "नहीं, मैंने तो नहीं सुना। मिसेज़ पटेल से बैठ कर बात कर रहा था... बड़ी अच्छी महिला हैं! मुझसे बहुत स्नेह करती हैं। लेकिन मुझे मिस्टर पटेल ज्यादा अच्छे लगते हैं। वैसे आदमी से परिचय रहना बहुत भाग्य की बात है। उन्होंने अपने जीवन में कितने बड़े-बड़े तूफ़ान सहन किये हैं, दिलेर कामों में जाने कितनी बार अपने जीवन को ख़तरे में डाला है इसकी गिनती नहीं है। इसीको तो 'जीवन' कहते हैं! लेकिन बचपन में जब वे अहमदाबाद के एक स्कूल में एक भोले बच्चे की तरह बैठे रहते थे तब किसने सोचा था कि वे कभी दुनिया की एक ओर से दूसरी ओर तक घूमते रहेंगे! इसीलिये पिता मुझे बड़े विस्मय से उनके बचपन की बात सुनाते थे। अहमदाबाद के स्कूल में पिता मिस्टर पटेल के साथ पढ़ते थे न!—दोनों में मित्रता थी। तब उन दोनों की उम्र चौदह-पन्द्रह साल की रही होगी। सहसा एक दिन सुबह से मिस्टर पटेल नहीं मिले। बहुत खोज की गई। कहाँ चले गये? कोई पता नहीं मिला। छः महीने के बाद जर्मनी से चिट्ठी आई—वहाँ उन्होंने पढ़ाई शुरू कर दी है और मज़े में हैं। फिर नारवे से चिट्ठी आई। उनके घर के लोग चकित रह गये। मिस्टर पटेल बीस वर्षों तक दुनिया में सर्वत्र घूमे हैं; इस जीवन में कितने ही देश देखे हैं, कितने ही अनुभव इकट्ठे किये हैं इसका कोई हिसाब नहीं है। उनका जीवन आश्चर्यपूर्ण है। वे जब वे सब

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बातें सुनाते हैं, तब मुझे इतना अच्छा लगता है!...बम्बई में वे एक प्रसिद्ध आदमी हैं फिर भी पिता का नाम लेते ही वे पहिचान सके थे,—उनकी प्रकृति बड़ी मीठी है!"

यह सब कोई नई बात नहीं है। बीसों बार लीला ने सुनी है। वह बोली, "क्या आज हम लोग घर नहीं लौटेंगे? नौ बजना चाहता है!"

उस विशाल बाग़ में तब उन दो मनुष्यों के सिवाय और कोई नहीं था। दोनों धीरे-धीरे बाग़ से निकल कर 'मालाबार हिल' सड़क से उतर आने लगे। एक दिन एक कालेज-स्टूडेंट के वीरोचित कार्य के बाद से रंजन प्रतिदिन लीला को उसके घर के द्वार तक पहुँचा देता है। घर के ज़ीने तक आकर बिदा लेने के समय रंजन ने दुःख प्रकट करते हुये कहा, "अब तक मुझे तुम्हारे द्वारा Knight errantry करके प्रसिद्ध होने का मौक़ा ही नहीं मिला!"

लीला बोलती है, "निराश मत होओ; भविष्य की बात कौन जानता है?" फिर हलकी मुसकान के साथ हाथ की पुस्तक को उसके कंधे से छुआ कर कहा, "खड़े क्यों रहे? घर जाओ!"

रंजन मानो सजग होकर कहता है, "हाँ—जा रहा हूँ। अच्छा चला; गुड-नाइट!"

फिर दिन-सी प्रकाशित स्टेंडहर्स्ट रोड पर चलते हुये रंजन की देह जब तक दीखती है तब तक लीला वहीं खड़ी रहती है। चरनी रोड के चौराहे पर जब वह अदृश्य हो जाता है, तब लीला धीरे-धीरे आगे बढ़ कर तीसरी मंज़िल पर जाने के लिये 'लिफ्ट' (lift) का बटन दबाती है। प्रतिदिन ही ऐसा होता है। प्रतिदिन ही उस समय लीला अपने हृदय में जाने कैसी एक कोमल दुर्बलता अनुभव करती है; और रंजन को जाने कैसी एक विह्वलता आ जाती है!

... ...

२४ मई।

रंजन ने आकर कहा, "तुम्हें एक बात कहूँगा, और एक चीज़ दिखाऊँगा! पर वायदा करो कि तुम देख सुन कर नाराज़ न होगी?"

"तुम ऐसी क्या चीज़ दिखाओगे, जिस से मैं नाराज़ होऊँगी?"

"है कुछ। मैंने जो किया है, उसमें तुम्हारी इजाज़त नहीं ली है इस लिये तुम नाराज़ या दुःखित नहीं होगी—यह वायदा अगर करो तो मैं कह सकता हूँ।"

"अगर मेरी इजाज़त न लेकर ही तुमने कोई बुरा काम कर डाला है—तो अगर मैं थोड़ा नाराज़ भी होजाऊँ तो हर्ज़ क्या है?"

"नहीं, तब तो मैं नहीं कहूँगा।"

अपनी मुसकान दबाकर लापरवाही के भाव से लीला ने कहा—"तो न कहो!"

वह जानती थी कि रंजन जो बात कहने के लिये आया है, वह अधिक देर तक उस बात को दबा कर नहीं रख सकेगा।

"लेकिन यह तुम्हारी ज़बरदस्ती है," चेहरे पर बनावटी गंभीरता लाकर लीला बोली, "तुम अन्याय करोगे पर मैं नाराज़ नहीं हो सकूँगी,—क्या तुम भविष्य में जीवन-भर ऐसी एक-तरफ़ा ज़बरदस्ती करते रहोगे?"

रंजन ने कहा, "नहीं, नहीं, मैं जीवन भर अन्याय नहीं करूँगा—और तुम्हें भी जीवन-भर अपना क्रोध दबा कर नहीं रखना पड़ेगा। केवल इस बार के लिये वायदा करो, मेरी लीला!"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"नहीं, मैं पहिले से वायदा नहीं करूँगी। पहिले दिखाओ। मुझे तो लग रहा है कि, अवश्य ही कोई serious मामला है।"

"यह सब कुछ नहीं। दिन पर दिन तुम जाने कैसी बेवकूफ़ होती जा रही हो! यह देखो।"

सचमुच ही बात अति साधारण थी। इस साल 'डर्बी-स्वीप' के टिकट ख़रीदने की बड़ी धूम मची थी, यह तो आप लोग जानते ही होंगे। रंजन की मित्र-मंडली ने भी अनेक टिकट ख़रीदे थे। इस वर्ष 'जुबिली' क्लब की 'लाटरी' बहुत जन-प्रिय हो उठी थी, मित्र-वर्ग की देखा-देखी रंजन ने भी उसी क्लब का एक टिकट पाँच रुपये में ख़रीदा था। और टिकट में 'नमू-डी-प्लूम' दिया था—'लीला'। रंजन उस टिकट को लीला को दिखाने के लिये लाया था, और उसकी बिना अनुमति से उसका नाम व्यवहार किया है इस लिये वह कुछ बुरा न माने, यह कहने के लिये आया था।

टिकट को देख कर लीला ने मन ही मन क्या सोचा यह पता नहीं चला; उसने कहा, "क्यों तुमने मेरा नाम दिया? अगर तुम्हें कुछ न मिले तो तुम मुझे अवश्य ही बदनसीब कहोगे!"

"तुम निरी पगली हो! लोग अपने परमात्मा के नाम से टिकट ख़रीद रहे हैं। रूपये न पाकर क्या वे परमात्मा को बदनसीब कह रहे हैं? मेरे मित्र वर्ग ने न जाने कितने देव-देवी के नाम से टिकट ख़रीदा; मैंने तुम्हारे नाम से ख़रीदा। तुम्हारे सिवाय और कोई नाम मुझे स्मरण नहीं आया। तुम्हारे नाम से टिकट ख़रीदा—मुझे इसी में आनन्द है। पुरस्कार पाऊँगा या नहीं यह मेरे मन में एक बार भी नहीं आया।"

"अच्छा, निरा कवित्व है! कोई हर्ज नहीं। पर यह टिकट मेरे पास रहा।"

"रहने दो। नम्बर मुझे याद है। ३२५९३।"

... ...

२ जून।

रंजन ने आकर खड़े खड़े ही कहा, "उठो। चलो हम लोग ज़रा टहले।"

लीला ने देखा—रंजन आज बहुत ही उत्तेजित है; उसकी आँखें और चेहरा उज्ज्वल हो उठा है। उसकी बात और व्यवहार में मानो एक आवेग क्षण-क्षण में कम्पन दे रहा है।

खड़ी होकर लीला बोली, "बात क्या है? क्या आज ही तुम मुझे kidnap करोगे? तो ठहरो मैं घर में कह आऊँ।"

इन बातों में ध्यान न देकर रंजन ने कहा, "नहीं—सोचा था कि, आख़िर में तुम्हें यह ख़बर देकर तुम्हें चकित करूँगा। पर मुझसे न कहे रहा नहीं जा रहा है। लीला! 'जुबिली' क्लब की 'लाटरी' में प्रथम पुरस्कार मेरे नाम पर आया है!"

"सच?"

"हाँ सच है। कल रात को मुझे एक मित्र कह गया है। मुझे रात भर नींद नहीं आई! आज अकेला ही ख़बर जानने के लिये जुबिली क्लब को जा रहा था; फिर तुम्हें साथ ले जाने की इच्छा हुई। तुम्हारे सौभाग्य से ही तो पुरस्कार पाया है। चलो, हम दोनों साथ जाकर पता लगा आयें। सुना है कि, पुरस्कार पाने वालों के नाम की लिस्ट बोर्ड पर चिपका दी गई है।"

लीला ने पहिले विश्वास नहीं किया। फिर जब उसे विश्वास हुआ, तब देखा कि जितना आनन्दित होना चाहिये था, वह उतना आनन्द अनुभव नहीं कर रही है।

Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No.
CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फिर भी वह अवश्य ही ख़ुश हुई। उसके नाम पर पुरस्कार आया है—इस छिपे आत्म-गौरव से वह ख़ुश हुई।

हार्नबी रोड पर जुबिली क्लब है। दूसरी मंजिल पर दफ़्तर है। ऊपर जाकर दोनों ने देखा—भीड़ कम हो गई है। बरामदे के 'बोर्ड' पर बड़े-बड़े अक्षरों में पुरस्कार पानेवाले लोगों के नाम, 'नम्-डी-प्लुम' और टिकट के नम्बर लिखे हुये थे।

रंजन और लीला बहुत देर तक अपने परिचित दोनों नाम की ओर देखते रहे। फिर रंजन ने दफ़्तर में प्रवेश करके क्लब के सेक्रेटरी से मिलना चाहा। ख़बर मिलते ही सेक्रेटरी दफ़्तर में आये। सज्जन बूढ़े हैं; चेहरे पर मुसकान खिली हुई थी। उन्होंने हाथ बढ़ाते हुये कहा, "Are you the lucky man? My congratulations!"

फिर वे देर तक अनेक बातें करते रहे—जिसके प्रथम भाग में आनन्द प्रकट था और अन्तिम भाग में कैसे क्लब से रुपये लेना है इसका उपदेश था। रंजन के पूछने पर उन्होंने बताया कि, दो लाख से अधिक उसे मिलेगा।

रंजन ने मुसकरा कर बग़ल में बैठी लीला को दिखा कर कहा, "इसी महिला ने मेरा भाग्य चमका दिया है।"

तब वे अँगरेज़ लीला की ओर देखकर मुसकराते हुये बोले, "अच्छा? नन्हीं सी महिला, मैं बधाईयाँ देता हूँ! ईश्वर आप लोगों को अनन्त सुख दें।"

लीला का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा, उसने किसी तरह कहा, "धन्यवाद!"

दफ़्तर से बाहर आकर वह नाराज़ होने लगी :

"तुम जाने कैसे हो! तुम्हें रत्ती भर भी शर्म नहीं है! ये सब उससे कहने की क्या ज़रूरत थी!..."

इन बातों से विचलित होने की तरह उस समय रंजन का चित्त नहीं था; उस समय उसका मन आँधी की तरह अस्त-व्यस्त हो उठा था। उसने कहा—

"आज मुझे तिरस्कार न करो, मेरी लीला! इस समय मुझे क्या इच्छा हो रही है, जानती हो?"

लीला ने शीघ्रता से उसे रोक कर कहा, "बस अभी चुप रहो; ज़्यादा बात न करो! याद रखना यह हार्नबी रोड है और आस-पास लोग चल रहे हैं।"

रंजन ने कहा, "सुनो! एक 'टैक्सी' किराये पर करलें और सीधा गोविन्दराव के घर जाकर कुछ रुपये उधार ले लूँ। पहिले वह हमेशा इन्कार कर देता था पर अब बीस माँगने पर चालीस दे देगा। बहुत प्यास लगी है, लीला! चलो, किसी 'रेस्तराँ' में कुछ खा-पीकर 'टैक्सी' में एक लम्बी सैर कर आवें...राज़ी हो न?"

"नहीं। यह सब पागल पन मुझे पसन्द नहीं है। टैक्सी की ज़रुरत नहीं—चलो ट्राम आ रही है, मुझे घर पहुँचा दो। साढ़े सात हो रहा है, यह ख़बर है तुम्हें!"

जब लीला सचमुच गम्भीर भाव से कुछ बोलती है, तब उसकी बात पर, रञ्जन दूर रहा, उसके घर के लोग तक कुछ बोल नहीं सकते हैं। रञ्जन ने कहा, "तो नहीं जाओगी! अच्छा, चलो—तुम्हें घर छोड़ आऊँ।"

अपने घर के द्वार पर खड़ी होकर लीला ने रञ्जन के कन्धे पर अपना दहिना हाथ रक्खा; (यही प्रथम उसने इस तरह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रञ्जन के कन्धे पर हाथ रक्खा) फिर ज़रा मुसकराकर कहा, "तुम मुझ पर नाराज़ तो नहीं हो गये ?"

रञ्जन ने धीरे-धीरे अपने दाहिने हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उतार दिया; उतार दिया पर छोड़ा नहीं; उसकी मुट्ठी में लीला का हाथ रहा। लीला फिर ज़रा मुसकराई।

रंजन ने कहा, "तुम पर नाराज़ होऊँ, मेरी यह क्षमता तुम्हीं ने हर ली है। पर यह तो कहो कि कब तुम्हारे पिता के पास शादी का प्रस्ताव करने के लिये आऊँ ?"

लीला ने मुसकराकर कहा, "कभी आना। इसके लिये जल्दी क्या है ?"

रंजन बोला, "नहीं, मुझे जल्दी है। मैं कल आकर बात पक्की कर लूँगा—तुम्हारी क्या राय है ?"

लीला ने कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा। पर मेरे हाथ को तो तुम अलग करके साथ नहीं ले जा सकोगे; इस लिये आज भर के लिये इसे छोड़ दो।"

रंजन ने धीरे-धीरे उसके हाथ को नीचे करके छोड़ दिया।

... ...

४ जून।

"जानती हो लीला, कल रात भर मैं सो नहीं सका;—रात भर मेरी आँखों के सामने भविष्य की जाने कितनी तसवीरें चक्कर काटती रही हैं! रातभर मैंने केवल परमात्मा को धन्यवाद दिया है। पहिले लगता था—जीवन में धन की जगह नीची है; लेकिन अब समझ रहा हूँ कि अब मेरी इतनी सार्थकता, लोगों के निकट इतना सम्मान—ये सब तो उसी धन के लिये है। आज सुबह कई दलाल आये थे। एक से दादर में एक अच्छा सा छोटा मकान दिलवा देने के लिये कहा है—तीस-पैंसीत हज़ार में। मोटर कौन सा लूँ ? 'वक्स-हल ?' या 'हिलमैन मिंक्स ?' ये दोनों ही बड़ी अच्छी है—मुझे बहुत पसन्द है। 'हिलमैन मिंक्स' ले लूँगा। यह सिर्फ़ तुम्हारे व्यवहार के लिये रहेगी। अपने लिये एक 'टू-सीटर' ले लूँगा। बड़ी मोटर पर तुम्हें शाम को हवा खिला लाऊँगा।..... समुद्र के किनारे से मोटर पचास मील की रफ़्तार में भागती रहेगी! सिर पर चन्द्रमा हम लोगों के साथ दौड़ता रहेगा; तारों का झुंड हम लोगों के साथ दौड़ता रहेगा। हवा से तुम्हारे बाल मेरे मुँह पर आ गिरेंगे; मेरे हाथों में तुम्हारा हाथ रहेगा। जीवन का श्रेष्ठ स्वप्न सफल होगा। क्या यह 'मार्वेलस' नहीं है ?"

किन्तु रंजन का इतना उच्छ्वास और एक के मन में रत्ती भर भी तरङ्ग नहीं उठा पा रहा है। उसकी कल्पना जितनी दूर तक बढ़ कर फैल रही है, लीला की कल्पना उतना ही तेजहीन और उदास होती जा रही है। जाने कैसी एक अशुभ शङ्का ने उसके मन को घेर रक्खा है। कल रात भर उसे नींद नहीं आई थी। बार-बार उसे लगा है कि, रंजन का यह आकस्मिक धन-सौभाग्य उसके लिये कल्याणकारी नहीं होगा। जिस रंजन की वह अब तक कल्पना करती आ रही है, कामना करती आ रही है, उसे अब वह मानो ढूँढ़ नहीं पा रही है। कल से वह पहिले का रंजन अदृश्य हो गया है; अब शायद उससे कभी भी भेंट नहीं हो सकेगी।

लीला ने धीमे स्वर से कहा, "तो क्या इम्तहान न देने का निश्चय किया ?"

"हुँ: इम्तहान! अब किस लिये इम्तहान में बैठूँ ? अब तो मैं डेढ़ सौ रुपये की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नौकरी करने नहीं जाऊँगा ! अच्छा, आज मैं जा रहा हूँ—रात को मित्रों को होटल में खिलाने का वायदा किया है; वे सब मेरे लिये प्रतीक्षा कर रहे होंगे। कल शायद मैं नहीं आ सकूँगा; बहुत लोग आ रहे हैं। कुछ दिन बीतने दो, फिर we two shall have honey moon life-long !"

रंजन तेज कदमों से चला गया। लीला आज बहुत दिनों के बाद अकेली घर लौट आई। आज अकेले घर लौटने में उसे कुछ डर लग रहा था। मानो उसे रोने की इच्छा हो रही थी।

... ...

५, ६, ७, ८ जून के बाद ९ तारीख़ को फिर रंजन 'हैंगिङ्ग गार्डन' के उस कोने की 'बेंच' पर दीखा।

लीला ने कुछ भी नहीं पूछा, रंजन स्वयं अपनी क़ैफ़ियत देने लगा।

"इन चार-पाँच दिनों बड़ा परेशान रहा, लीला ! वाक़ई बहुत परेशान रहा। लोग घेरे रहे—साँस लेने की फ़ुरसत नहीं मिली। इस शोर-गुल में तुम्हें भूल ही जा रहा था ! (लीला की मुसकान उसकी दृष्टि में नहीं पड़ी) तुमसे मिलने के दूसरे दिन दलालों के साथ कई जगह मकान और मोटर देखने के लिये गया। उसके दूसरे दिन चिक लेने में और बैंक में जमा करने में सब समय बीत गया ! परसों मिसेज पटेल ने मेरी दावत की थी—वहीं सारी शाम और संध्या बीत गई। कल आना चाहता था—पर घर में एक पर एक लोग आते रहे ! कुछ भी समय नहीं मिला !"

लीला ने पूछा, "क्या पटेलों के घर कोई उत्सव था, इस लिये तुम्हें निमंत्रित किया था ?"

"नहीं, नहीं। उन्होंने 'स्पेशली' मेरी ही दावत की थी—केवल मेरी ही दावत थी। और किसी की नहीं। सच लीला, इसमें शक नहीं, वे बड़े ही अच्छे आदमी हैं। मिसेज पटेल कह रही थीं—'यह न सोचो रंजन, कि अब तुम धनी हुये हो इसलिये हम लोग तुम्हारी ख़ातिर कर रहे है !' मैंने कहा, 'जी नहीं। आप लोग सदा से मुझे स्नेह करते हैं यह क्या मैं नहीं जानता हूँ !' सचमुच, उस प्रथम दिन से ही वे मुझसे स्वजन की तरह व्यवहार करते हैं।"

बहुत देर से लीला उस बात को कहना चाह रही थी; पर लज्जा के कारण नहीं कह पा रही थी। लेकिन अब उसे कहना ही पड़ा क्यों कि वह बहुत ही आशंकित हो पड़ी है, अब संकोच का अवसर नहीं रहा। उसने कहा—"तो कब हमारे घर आ रहे हो ?"

"तुम्हारे घर ? क्यों ? अच्छा—हाँ, हाँ, मैं भूल ही गया था ! हाँ, हाँ, ज़रूर जाऊँगा। दो-एक दिन में ही जाऊँगा। चलो, रात बढ़ रही है, तुम्हें अपने घर छोड़ आऊँ।"

७ जून को, यानी जिस दिन रंजन पटेलों के यहाँ दावत खाने गया था, उस दिन की सब बातें कही नहीं गई हैं। जब तक रंजन लीला को उसके घर तक पहुँचा दे, तब तक आपको वे सब बातें सुना दूँ।

मिसेज पटेल सामने बैठी हुई महिला से बोलीं, "मौसी ! यही रंजन है। बड़ा नेक लड़का है। रंजन, आप हमारी मौसी हैं; मिसेज नरोत्तमदास का नाम तो तुमने सुना है ?—आप ही हैं। इनसे नमस्ते करो !"

केवल रंजन क्यों, मिसेज नरोत्तमदास का नाम कौन नहीं जानता है ? बम्बई के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऊँचे समाज में उनकी जैसी असंभव को संभव करनेवाली औरत दूसरी नहीं है। उन के प्रसन्न होने पर मिलन के इच्छुक युवक-युवतियाँ और किसी की भी सहायता आवश्यक नहीं समझते हैं।

मिसेज़ नरोत्तमदास ने कहा, "अच्छा, आप ही रंजन हैं! मिसेज़ पटेल सदा आपकी तारीफ़ करती रहती हैं;—देखती हूँ, ये सब आप से बहुत स्नेह करते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप इनके स्नेह के योग्य हों। एक बात आपको कहे बिना मुझ से रहा नहीं जाता है। अब, जब आप को ख़ुद ही सब कुछ करना-धरना है, तब हरेक काम बहुत सोच-विचार कर कीजिये। बिना सोचे-विचारे शीघ्रता से कोई काम न कर डालिये, और सामयिक उत्तेजन से या मोह से कोई उत्तरदायित्वपूर्ण काम में अधिक न बढ़िये। इस समय नेक सलाह की आपको सख्त ज़रूरत है। मैं हर तरह से आपकी मदद करने के लिये तैयार हूँ। अगर कभी आप सलाह की ज़रूरत समझें, तो आप मेरे पास आने में दुविधा न कीजिये। मेरा घर तो आप जानते होंगे?..."

ऐसी उपदेश भरी मीठी बात रंजन ने जीवन में कभी भी नहीं सुनी थी; वह गद्-गद् हो गया। उसने और एक बार मिसेज़ नरोत्तमदास को 'नमस्ते' करके कहा, "धन्यवाद! मैं आपकी सलाह कभी नहीं भूलूँगा। मैं कल आप के घर जाऊँगा। आप से कुछ बातें कहना है और कुछ जानना भी चाहता हूँ।"

मिसेज़ नरोत्तमदास प्रमिला की माता की ओर देखकर हलकी मुसकुराई, फिर रंजन से बोली, "आ जाना। कल दोपहर को मुझे फ़ुरसत है।"

चाय पीने के बाद रंजन ने बिदा माँगी। उसका सिर दर्द कर रहा था। घर जाकर थोड़ी देर आराम करेगा।

इसी समय कमरे में प्रमिला आई। रंजन को नमस्ते करके धीमी मुसकराहट के साथ बोली, "आप अच्छे हैं?"

रंजन ने शीघ्रता से नमस्ते करके कहा, "हाँ। आप अच्छी हैं?"

प्रमिला बोली, "हाँ।"

प्रमिला के सौन्दर्य में एक आकर्षण है। और आज के विशेष प्रसाधन, क़ीमती बैंगनी रंग की साड़ी और सफेद ब्लाउज और गहनों ने उसके आकर्षण में चार चाँद लगा दिये थे। रंजन शीघ्रता से प्रमिला की देह पर से आँखें नहीं हटा सका।

मिसेज़ नरोत्तमदास बोलीं, "प्रमिला, क्या तुम हवा खाने जा रही हो?"

प्रमिला बोली, "हाँ। क्या आप कुछ कहना चाहती हैं?"

तब मिसेज़ नरोत्तमदास ने रंजन से कहा, "तुम्हारा सिर दर्द कर रहा था न? तो प्रमिला के साथ ज़रा मोटर में समुद्र की हवा खा लो—दर्द अच्छा हो जायगा। ताज़ी हवा तुम्हें बहुत फ़ायदा पहुँचायेगी।"

प्रमिला का मीठा आह्वान सुनाई दिया—"चलिये!"

उस रात्रि को बहुत देर तक मोटर पचास मील के रफ़्तार में दौड़ी थी! उनके सिर पर चन्द्रमा उनके साथ-साथ दौड़ा था; झुन्ड के झुन्ड तारे उनके साथ दौड़े थे। हवा से एक के बाल दूसरे के मुँह पर आ गिरे थे; एक का हाथ दूसरे की मुट्ठी में बन्द था! एक के जीवन का श्रेष्ठ स्वप्न कदाचित् सफल भी हुआ था। क्या यह 'मार्वेलस' नहीं था?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वार के निकट आकर रंजन ने कहा, "आज तुम कुछ थकी सी लग रही हो। क्यों ? तबीयत तो ठीक है ?"

लीला बोली, "नहीं, मैं अच्छी तो हूँ।"

इससे अधिक वह कुछ बोल नहीं सकी। उसकी आँखों में जाने क्या गिरा था—इसमें ही वह लगी हुई थी।

उस दिन बिदा का क्षण पहिले की तरह आवेश से भरा नहीं हो सका; पानी बरसने की संभावना है कहकर रंजन शीघ्रता से चला गया।

फिर—

रंजन के दिन तूफ़ान की तरह तेजी से एक एक करके बीत जाने लगे। उनकी गति इतनी द्रुत है कि उनका ब्योरेवार वर्णन करना संभव नहीं है,—केवल रंजन ने कई दिनों जो दावतें स्वीकार की थीं उनकी और उसके साथ अन्य निमंत्रित अतिथियों की 'लिस्ट' दे रहा हूँ। इससे अधिक कहने की शायद आवश्यकता नहीं होगी। उन कई दिनों तक रंजन लीला से मिल नहीं सका था। बीच में, एक दो पंक्तियों के पत्र में जताया था कि, अगली २९ जून शाम को वह लीला से मिलेगा।

१२ जून। मिसेज़ नरोत्तमदास के घर 'टी-पार्टी'। अतिथियाँ थीं—मिसेज़ पटेल; उनके घर की और दो महिलायें; प्रमिला और रंजन।

१५ जून। पटेलों के घर में 'डिनर-पार्टी'। अतिथियाँ—मिसेज़ नरोत्तमदास; श्रीमती सुकुमारी पंड्या (आप श्रीमती नरोत्तमदास की आत्मीया हैं); ललिता और यशवन्ती (प्रमिला की सहपाठिनी); और रंजन।

१८ जून। श्रीमती सुकुमारी पंड्या के घर में दोपहरी का भोजन। अतिथियाँ—मिसेज़ नरोत्तमदास; मिसेज़ पटेल; रजनी कुमार (आप यशवन्ती के बड़े भाई हैं; उनसे ललिता की शादी की बात तय हो चुकी है और उनसे रंजन की बहुत दोस्ती भी हो गई है); ललिता; प्रमिला और रंजन।

२६ जून। ललिता के जन्म-दिन की दावत। अतिथियाँ—ललिता की तीन सह-पाठियाँ, एक चचेरा भाई, प्रमिला और रंजन।

यह कदाचित आप लोगों को समझाने की आवश्यकता नहीं है कि जिस उद्देश्य से उपरोक्त दावतें हुईं उसमें काफ़ी सफलता रही।

... ...

२९ जून रात्रि के सात बज कर चालीस मिनट।

पर्दे पर लारेन्स टिबेट उस समय गा रहा था—"You are the one and only girl for me..."

बॉक्स के कोने में बैठ कर प्रमिला के पीठ के पास कान के नीचे मुँह रख कर रंजन कह रहा है, "तुम मुझ पर विश्वास करो, प्रमिला; आज तक तुम्हारे सिवाय और किसी को ऐसा हृदय से प्रेम नहीं किया है। जिसकी बात सुन कर तुम मात कर रही हो, कभी भी मैंने उससे हृदय से प्रेम नहीं किया। वह बहुत ही साधारण है—बहुत ही common है; उसको भला मैं प्रेम कर सकता हूँ! मैंने इस जीवन में केवल तुम्हीं को सच्चे हृदय से प्रेम किया। प्रमिला, मुझ पर विश्वास करो; इस तरह मुँह फेर कर न रहो..."

इस इक़रार के बाद प्रमिला मुँह फेर कर नहीं रह सकी थी। और फिर प्रमिला की आँखों की ओर देखते हुये रंजन ने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu. Trust. Funding by MoE-IKS

उसकी सम्मति की भी प्रतीक्षा नहीं की—जब कोई व्यवधान ही नहीं था।

... ...

बाग़ की बेंच पर बैठ कर लीला प्रतीक्षा कर रही है। मन ही मन वह अधीर हो रही है। इतनी देर क्यों? कभी भी तो रंजन इतनी देर नहीं करता है! पत्र को उसने फिर एक बार पढ़ा—हाँ आज ही की तो बात लिखी हुई है। तब? पर देर होना क्या असम्भव है? देर तो हो ही सकती है। अब उसे कितने काम हैं! वह क्या अब पहिले का सा है। आता ही होगा। वह देर करके आ रहा है इसलिये क्या लीला उस पर मान करेगी? बिलकुल ही नहीं। वह उसकी सब बातें मुसकान भरे चेहरे से सुनती रहेगी—कितनी ही काम-काज की बातें! आज वह यहाँ बहुत देर तक बैठ कर रंजन से बातें करेगी। अधिक रात्रि को लौटने के लिये शायद पिता का तिरस्कार सुनना पड़ेगा। वह चुप चाप सुन लेगी,—और दो-चार दिनों की देर ही तो है! पर शायद रात्रि बहुत अधिक हो गई। कितने बजे होंगे? (अपनी कलाई की घड़ी की ओर देखा) सात बज कर पैंतालीस मिनट हैं। उसका हृदय एकाएक काँपने लगा। नहीं, नहीं, यह सब कुछ नहीं है। रात अधिक नहीं हुई है—घड़ी अवश्य ही तेज़ चल रही है। लीला और कुछ समय तक प्रतीक्षा करेगी। वह आ रहा है। वह आ ही रहा होगा...!

दिली दोस्त

(श्री हंसकुमार तिवारी)

एक बूढ़े पंडुक ने देखा, एक बत्तख़ पोखरे में अपने बच्चों को तैरना सिखा रही है। वह सिखा रही थी, किस तरह सिर उठा कर पानी पर तैरा जाता है। कह रही थी, 'सिर उठाये बग़ैर समाज में नहीं रहा जाता'—और बीच-बीच में यह भी कहती जाती थी कि ऐसा हो किस तरह से सकता है।

बच्चे महज़ बच्चे थे। समाज में रहने की उपयोगिता उनकी अक़्ल में अँटती ही नहीं थी; इसलिये माँ की नसीहतों पर वे बिलकुल ही कान नहीं दे रहे थे।

बच्चों की नासमझी देख पंडुक ने कहा—"इन बेवकूफों का डूब मरना ही बेहतर है!"

बत्तख़ ने बड़ी धीरता से कहा—"नहीं-नहीं, कोई भी काम पहिले-पहिल सीखना पड़ता है, और ख़ास कर बच्चों को सिखाने में तो धीरज खो देने से काम ही नहीं चलता।"

पंडुक ने कहा—"माता-पिता के अंतर की अनुभूति मैं क्या जानूँ भला! मेरा तो संसार ही निराला है। इतनी उम्र हुई, मैंने अपनी शादी नहीं की और न शादी करने की ख़्वाहिश ही रखता हूँ। मैं मानता हूँ, प्यार करना एक अच्छी चीज़ है; लेकिन दोस्ती का स्थान उससे बहुत ऊँचा है। मेरी समझ से, दिली दोस्त से और कोई बड़ी वस्तु नहीं।"

बाँध की झाड़ी पर बैठी थी एक फूल-सुंघी। इन दोनों की बातचीत सुनकर वह मन ही मन हँस रही थी। बीच ही में—और धैर्य न रख सकने के कारण—टपक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पड़ी—"ज़रा अपने दिली दोस्त के आदर्श तो कहो, मैं भी सुनूँ !"

"कैसी बेपर की उड़ाई तुमने !"—पंडुक ने एक तरह से चिल्ला कर ही कहा—"अजी, मेरा दिली दोस्त तो मुझमें ही लीन होगा और एकबारगी लीन !"

"और तुम उसके लिए क्या करोगे ?"—पंख को ज़रा फड़फड़ा कर फूलसुंघी ने पूछा।

पंडुक ने कहा—"तुम्हारी बात तो मेरी समझ में ख़ाक भी नहीं आती।"

फूलसुंघी बोली—"ख़ैर, मैं एक ऐसी ही कहानी सुनाती हूँ; सुनो।"

पंडुक ने पूछा—"कहानी मेरे संबंध की है क्या ? अगर हाँ, तो मैं सुनने को तैयार हूँ, क्योंकि कहानी सुनना मैं बहुत पसन्द करता हूँ।"

"तुम्हारे संबन्ध में भी वह ठीक ही बैठेगी"—और फूलसुंघी ने झाड़ी छोड़ कर कहना शुरू किया।—

"किसी समय बनवारी नाम का एक बड़ा ही सीधा सादा आदमी रहता था।"

"वे क्या कोई मशहूर आदमी थे ?" पंडुक ने बीच में ही पूछा।

"वैसा मशहूर तो नहीं, लेकिन उसका हृदय बहुत ही उच्च था। एक बहुत ही छोटे से घर में वह रहता था और उसके एक फुलवारी थी। वैसी सुंदर फुलवारी उतनी जगह भर में और किसी के न थी। रंग-बिरंगे सुंदर फूल खिलते थे उसमें; मौसिमी फूलों की सुवास और सुन्दरता देखने वालों के दिल ले लेती थी। अपनी उसी छोटी-सी फुलवारी में वह रोज़ काम करता रहता। कहने को उसके कितने ही दोस्त थे; मगर उन सब में प्यारे और दिली दोस्त थे रघुवीर।

रघुवीर जब भी उसकी फुलवारी होकर गुज़रते, जी-भर फल-फूल तोड़ लेते। कहा करते थे—'दिली दोस्त की सारी ही चीज़ें दोस्त के उपभोग की होनी चाहिये !' बेचारा बनवारी इस ऊँचे आदर्श की बात पर सिर हिला कर फीकी-फीकी हँसी हँस देता। यही उसकी सम्मति थी।

लेकिन पास-पड़ोस के लोगों को रघुवीर का यह व्यवहार फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। उसके पास छः दुधैल गायें, काफ़ी तादाद में बकरियाँ और ज़रूरत से ज़्यादा अनाज था। लेकिन, कभी भूल कर भी वह बनवारी को थोड़ा-सा दूध या मुट्ठी भर अनाज देने की बेवकूफ़ी नहीं करता। और जब जी में आता, इच्छा भर उसके फल-फूल तोड़ लेता, यह कैसी चाल ? लोग जब इस बात की चर्चा बनवारी के आगे छेड़ते, तो वह केवल हँस कर रह जाता।

केवल जाड़े के दिनों को छोड़ और दिन बनवारी के अच्छे ही कटते। फूलों की बिक्री से ख़र्च भर को आमदनी हो ही जाती किसी तरह। मगर जाड़े में पासा पलट जाता। फल-फूल न होने की वजह से, रोज़गार की मिट्टी पलीत हो जाती। समय-असमय के लिये कुछ जोड़ना उसने सीखा ही नहीं था। इसलिये जाड़े के दिनों में या तो फ़ाके की नौबत आती या अधभुखे पड़ रहना पड़ता। इस आड़े समय में भूले-भटके भी रघुवीर की परछाईं उसके दरवाज़े न पड़ती। यह असीम सूनापन भी बनवारी को कुछ कम कष्ट नहीं देता।

रघुवीर की स्त्री बराबर पति से तक़ाज़े करती—'ज़रा बनवारी से एकाध बार मिल-मिला भी तो आओ, इन दिन बड़ी मुसीबतों में है बेचारा !'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'अजी, तुम क्या जानो'—बड़े तपाक से रघुवीर कहता—'आपद-विपद में किसी से मिलना-मिलाना बड़ी बेजा बात है। दुख अकेले ही झेलना चाहिये। जब बासंती बयार डोल जायगी और उसकी फुलवारी खिले फूलों की मस्तानी महँक से भर जायगी, तो वह मुझे उपहार में बहुत से फल-फूल देकर बहुत ही प्रसन्न होगा।'

'क्या ख़ूब युक्ति है! बन्धुत्व पर ऐसा मार्मिक व्याख्यान शायद ही कोई आचार्य दे सकें।'

माँ-बाप की बात-चीत सुनकर छोटे लड़के ने कहा—'तो बनवारी हमारे घर क्यों नहीं आते हैं? भोजन की उन्हें कौन-सी कमी पड़ी है? वे आयें, तो मैं अपना हिस्सा उन्हें काट कर दूँगा और ये ख़रगोश के बच्चे दिखलाऊँगा!'

रघुवीर ने कहा—'मूर्ख! मैं तुझे स्कूल भेज कर नाहक़ ही रुपये पानी में फेंक रहा हूँ। अरे, उसे यदि यहाँ लाऊँ, तो मेरी अच्छी अवस्था देख स्वभावतः ही उसके मन में हिंसा होगी; फिर हिंसा हो जाने से मनुष्य का स्वभाव ही बिगड़ जाता है। मैं उसका दिली दोस्त हूँ। मैं नहीं चाहता कि उसका स्वभाव बिगड़ जाय। दूसरी बात, यदि वह यहाँ आकर कुछ पैंचा-उधार माँग बैठे, तो मैं तो अन्न देने से लाचार हूँ। समझते हो न, अन्न और मित्रता, दोनों दो वस्तु हैं—एक नहीं!'

लड़के का चेहरा तमतमा उठा। सिर झुका कर उसने चाय के प्याले में मुँह लगाया। रघुवीर ने तसल्ली दी—'ख़ैर, इस बार मैं तुम्हें माफ़ करता हूँ।'

'वह, कितना लाजवाब होता है भाषण तुम्हारा!' प्याले में चाय उड़ेलते हुए पत्नी ने कहा।"

"ख़तम हो गई कहानी?"—पंडुक ने पूछा।'

फुलसुंघी बोली—"अरे, यहीं तो शुरू हुई!"

पंडुक कहने लगा—"आजकल के कहानीकारों की यह नीति हो गई है कि कहानी का आख़िरी अंश तो कह लेते हैं पहिले, फिर धीरे-धीरे शुरू का अंश कहते-रहते हैं। शायद कहानी कहने की यही आधुनिक प्रणाली है। उस दिन इस बाँध से होकर गुज़रते हुए एक युवा से एक धुरंधर समालोचक यही कह रहे थे। बड़ी देर तक उन्होंने युवा को समझाया था, जिससे मेरे मन में भी यह सत्य मजीठ की तरह गाढ़ा और पक्का चढ़ गया। और वास्तव में उनकी बात ग़लत भी कैसे हो सकती है। उनके सिर के बाल लगभग ग़ायब थे और आँखों पर नीले काँच की ऐनक जो बैठी थी! मार्के की बात यह भी थी कि युवा की हरेक बात पर वे प्रौढ़ महोदय हँस कर केवल 'हूँ' कह कर ही रह जाते थे। ख़ैर, जाने भी दो इन बातों को, तुम अपनी अधूरी कहानी पूरी कह लो। उसके लिये मेरे मन में सहानुभूति का उद्रेक होने लगा है। अजी, मेरे मन में भी भाँति-भाँति की अनुभूतियाँ जमी बैठी हैं न!"

फुलसुंघी ने फिर शुरू किया—"जाड़े के दिन ख़तम हुए और बनवारी की फुलवारी हँस उठी, पेड़-पौधे फल-फूलों से लद गये। रघुवीर की श्रीमती ने फ़रमाया—'अब बनवारी से एक बार मिल आना चाहती हूँ।'

'क्यों नहीं, तुम तो दया और ममता की जीती जागती प्रतिमा हो, प्रतिमा! परायों की फ़िक्र में ही तुम्हारी घड़ियाँ गुज़रती हैं। ख़ैर, जाना चाहती हो, तो जाओ;

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मगर वह बड़ी टोकरी साथ ले जाने में भूल न करना। उसमें भर कर फूल ले आना—हाँ!'

और एक दिन रघुवीर भी बनवारी की फुलवारी में हाजिर हुआ।—'क्यों भाई मजे में हो न?'

फावड़े के सहारे टिककर बनवारी ने कहा—'हाँ भाई, सकुशल ही हूँ। अपनी कहो, बाल-बच्चों की खैरियत तो है?'

'सब मजे में हैं और जाड़े के दिन कैसे रहे तुम्हारे?'

'अच्छे नहीं रहे। यह पूछने के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूँ। अब तो बसंत उतरा है, फल-फूल लगने लगे हैं!'

'जाड़ा भर हमें तुम्हारी ही फ़िक्र पड़ी थी; दिन-रात यही सोचते बीतते कि जाने तुम्हारे दिन कैसे कटेंगे!'

'भाई, तुम लोग मेरे सच्चे मित्र और हितैषी हो। मैं तो इस चिन्ता में घुल रहा था कि शायद तुम मुझे भूल गये।'

'बड़े दुख की बात है यह कि तुम्हें इस की चिन्ता थी। मित्रता भी कभी भूली जा सकती है? शायद तुम अंतस्तल के कवित्व को नहीं समझ सकते। वाह, यह गुलाब तो बहुत सुन्दर है।'

'सचमुच ही ये बहुत सुन्दर हैं। यहाँ के जमींदार की लड़की ने कहला भेजा है, वह इन गुलाबों को खरीदेगी। जो मूल्य मुझे मिलेगा, उससे माल ढोने का एक ठेला खरीदूँगा।'

'ठेला? ठेला तो तुम्हारे पास था ही, बेंच दिया क्या?'

'हाँ, बेंच ही दिया। जाड़े के दिन बड़े बुरे बीते। पहिले तो चाँदी के बटन ही बेंचे। जब उससे पूरा न पड़ा, तो ठेला बेचने पर बाध्य होना पड़ा। अब जो आमदनी होगी, उससे वे सारी चीजें कर लूँगा।'

'देखो, ठेला मोल लेने की कोई जरूरत नहीं, मेरे पास एक है, मैं तुम्हें दूँगा। इधर-उधर कुछ टूट-टाट गया है, मरम्मत करा लेने से काम चल जावेगा। तुम्हें आम से काम या पेड़ गिनने से? एक तरफ़ की हिस्सा कुछ बेकाम है और पहिये के डंडे दो-एक गायब हैं। जो हो, मैं ठेला तुम्हें दे दूँगा। इस तरह का दान प्रायः आदमी नहीं कर सकते; परन्तु मैं मित्र के लिये त्याग करने के महत्व को अच्छी तरह जानता हूँ। मेरे पास एक नया ठेला भी है; मैं, सच मानो, वह ठेला तुम्हें अवश्य दूँगा।'

कृतज्ञता के बोझ से दबते हुए बनवारी ने कहा—'यह तुम्हारी दरिया दिली है! मेरे पास एक तख्ता है, मैं उसकी मरम्मत करवा लूँगा।'

'अच्छा, तख्ता तुम्हारे पास है? उसी की तो मुझे सख्त जरूरत है। मेरी छत का एक तख्ता टूट गया है, उस जगह को बंद न करने से पानी चूकर अनाज-पाती को बर्बाद कर देगा। इसकी याद दिला कर सचमुच ही तुमने बड़ा उपकार किया। भले काम किस तरह खुद-ब-खुद दूसरे भले कामों में आ मिलते हैं! तो मुझ से तो तुम्हें ठेला मिला, बदले में वह तख्ता मुझे दे देना, भला? सोच देखो, ठेले की कीमत तख्ते से बेशक ज्यादा है। दोस्ती के नाते इस हिसाब-किताब की बिलकुल जरूरत नहीं। जरा ले तो आओ उसे, मैं छत में काम लगवा दूँ।"

बनवारी ने हामी भरी और तख्ता ले आया।

'कुछ वैसा बड़ा तो नहीं है। ठेले की मरम्मत कराने के लिये तुम्हारे पास कुछ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रह भी नहीं गया। ख़ैर, यह ग़लती मेरी नहीं। हाँ, जब मुझ से तुमने ठेला पाया, तो तुम मुझे एक डाली फूल तो दोगे ही ?'

अचरज में पड़कर बनवारी ने कहा—'एक डाली !' वह जानता था, फूल एक डाली से अधिक तो होंगे भी नहीं। अगर सब फूल वह रघुवीर को ही दे देगा, तो बेचने को कुछ बच ही नहीं रहेगा और वह बटन भी ख़रीदने से रहा।

रघुवीर बोला—'जब तुमने मुझ से ठेला पाया, तो बदले में एक-दो गुलाब पाने की इच्छा मैं नहीं रखता। मेरी धारणा, हो सकता है वह भूल भी हो, यह है कि दोस्ती में स्वार्थ की गुँजाइश नहीं रह सकती।'

'मेरे दोस्त, मैं तुम्हारी बातों से बाहर कब हूँ ? बाग़ के सारे ही फूल तुम्हारे हैं। तुम्हारे आदर-सत्कार में मुझे जो ख़ुशी हासिल होती है, शायद आकाश का चाँद पाकर भी न हो। रहे बटन, न छुड़ा सकूँगा, न सही।'

बनवारी गया और बात की बात में गुलाबों से डाली भर लाया।

रघुवीर ने दुआयें दीं और कष्ट से तख्ते को कंधे पर लाद कर तथा फूलों की डाली एक हाथ से झुलाकर चलता हुआ।

ठेला पाने की उम्मीद पर बनवारी ने भी दिल खोलकर धन्यवाद दिये।

दूसरे दिन काम करते हुए रघुवीर की आवाज़ सुनकर बनवारी बाहर निकला। देखा, दोस्त के कंधे पर एक भरा-पूरा बोरा लदा था।

रघुवीर ने कहा—'बनवारी, दोस्त, ज़रा बाज़ार जाकर मेरा यह धान बेचकर मेरी सहायता करो।'

'आज तो भाई, मुझे पलक मारने की भी फ़ुरसत नहीं। पौधों को पटाना है, ज़रा नराना भी है। बेलें इधर-उधर बिखर गई हैं, उन्हें भी ठीक करना है।'

'वाह भाई, मैं ने तुम्हें ठेला दिया और बदले में तुम इतना भी नहीं कर सकते !'

'माफ़ करना, ऐसा कौन-सा काम है, जो मैं तुम्हारे लिये नहीं कर सकता।' उसने देह पर चादर डाली और कंधे पर धान का बोरा लाद कर बाज़ार की राह ली।

चिल चिलाती धूप ! उसने पूरे तीन कोस की मंजिल तै की। राह में एक जगह ज़रा देर के लिये ठहरना भी पड़ा था। अच्छी दर में धान बेंच कर वह लौट आया। चोर-उचक्कों के डर से राह में कहीं ज़रा देर सुस्ता लेने की भी हिम्मत न पड़ी। सोने के समय एक लंबी साँस लेकर उसने कहा आज मेहनत तो ख़ूब करारी पड़ी; मगर संतोष की बात है कि रघुवीर की बात न टाली, वह मुझे ठेला देगा।

बनवारी सो ही रहा था कि रुपया लेने के लिये सवेरे रघुवीर आ पहुँचा। वह जानता था कि दिन तक सोने की आदत बनवारी की नहीं है, फिर भी बोला—'तुम बड़े आलसी हो ! मेरी धारणा थी कि जब मैं तुम्हें ठेला दे रहा हूँ, तो तुम ज़रूर ही संतोष-जनक काम करोगे। जानते हो, आलस पाप है। मैं हर्गिज़ नहीं पसन्द करता कि मेरा कोई मित्र आलस में डूबा रहे। स्पष्टवादिता के लिये क्षमा-प्रार्थना है। सच तो यह है कि, मिताई में भी अगर मन में एक और बाहर एक बात रही, तो मिताई क्या ! इसी नाते ख़री बातें कहने की हिम्मत कर सका हूँ। हाँ में हाँ मिलाने वालों को मैं मित्र ही नहीं समझता। दोस्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो मैं उसे मानता हूँ, जो मित्र की भलाई के लिये अप्रिय बातें भी सुनाने से नहीं चूके।'

'भैया रघुवीर, तुम्हारा कहना बेशक दुरुस्त है; मगर कल हद से ज्यादा थक गया था, इसलिये उठने को जी ही नहीं चाह रहा था। इच्छा हो रही थी, कुछ देर और चिड़ियों के गीत सुनूँ। उससे मुझे काम करने में आनन्द और उत्साह मिलता है।'

'ज़रा मुँह-हाथ धोने के बाद मेरे यहाँ आना;'—रघुवीर ने कहा—'मेरी छत मरम्मत करने में थोड़ी मदद दे देना, भला?'

दो दिन से फुलवारी के काम वैसे ही पड़े थे—जाने की इच्छा तो वनवारी की राई भर भी न थी। परन्तु, दिली दोस्त है, तग्गातोड़ जवाब दे तो कैसे? संकोच के साथ उसने पूछा—'अगर कारणवश न आ सका, तो क्या बंधुत्व की मर्यादा का उल्लंघन होगा?'

'जब मैं तुम्हें ठेला ही दे रहा हूँ, तो विशेष कुछ कहना ही फ़िजूल है। हाँ, बात यह है कि अगर तुम न आ सकोगे, तो वह काम मुझे ही करना पड़ेगा।'

'ऐसा भी हो सकता है भला!' वनवारी ने बिछावन छोड़ दिया। झटपट मुँह-हाथ धो लिये और कन्धे पर गमछा रख कर छत मरम्मत करने को चल पड़ा।

काम ख़तम होते-होते साँझ हो गई। रघुवीर ने आकर पूछा—'क्यों, हो गया?'

'हाँ'—वनवारी जीने से उतर आया।

रघुवीर ने दूर की कही—'लेकिन भई, जो कहो, दूसरे का कोई काम कर देने पर अपार आनन्द होता है।'

'तुम्हारी बातों में मुझे बड़ा आनन्द मिलता है!'—कपाल का पसीना पोंछ कर बनवारी ने कहा—'अच्छा भाई, इसका सबब तो बताओ कि तुम्हारी जैसी बातें हम लोगों के मुँह से क्यों नहीं कढ़तीं?'

'बेशक कढ़ेंगी। अभी तो मिताई की बाहरी ओर को ही तुम देख सके हो, एक दिन इसकी निगूढ़ सत्यता भी जानने से बाक़ी न रहेगी। इसके सत्य और महत्ता सभी जान पाओगे।'

'मैं समझ सकूँगा?'

'क्यों नहीं? ख़ैर, आज तुमने बड़ी कड़ी मेहनत की है, जाकर आराम करो। कल एक बार बकरियों को पहाड़ से चरा लाना।'

बनवारी राज़ी हो गया। दूसरे दिन रघुवीर बकरियों को उसके घर तक पहुँचा आया। वनवारी दिन भर बकरियों के पीछे हैरान-हैरान रहा। शाम को जब लौटा, तो थकावट बहुत अधिक मालूम हो रही थी। सो पड़ा और दिन निकल आने पर ही जगा। इधर कई दिनों से फुलवारी की ओर देखने की भी फ़ुर्सत न मिली थी। आज वह पहिले उधर ही दौड़ा। कभी-कभी उसके जी में आता कि इस व्यवहार से फूल के पौधे यह सोचते होंगे कि मैं उन्हें भूल गया हूँ। वे चाहे जो समझें, मैं रघुवीर से मित्रता कर सका हूँ। वह ठेला देने का वचन दे चुका है, यह उसकी दान-वीरता का परिचय है।

रघुवीर की एक बात भी वह नहीं टालता। मित्रता के क़िस्से वह उससे बड़े ध्यान से सुनता और रात को मन ही मन उन्हें पढ़ा करता। उसके विचार से रघुवीर जैसे ज्ञानवान लोग बहुत थोड़े हैं।

एक दिन रात को बनवारी के द्वार पर किसी ने धक्के दिये। बाहर से आँधी की प्रलय-हुँकार सुनायी दे रही थी। दरवाज़

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर फिर धक्का पड़ा। शायद कोई राही ख़ौफ़नाक रात में मुसीबत का शिकार हुआ है, यही सोच कर वह द्वार खोलने को उठा। खोलने पर देखा, हाथ में लालटेन लिये रघुवीर खड़ा था। उसके चेहरे की मुर्ख़ी उड़ गई थी। उसने कहा—'बनवारी भाई, बड़ी मुसीबत में पड़ा हूँ; ज़ीने से गिर कर मेरे छोटे लड़के की हड्डी-पसली चूर-चूर हो गई है। मगर मुसीबत है कि इस भयंकर रात में उसे अकेला छोड़ कर डाक्टर के यहाँ कैसे जाऊँ। यदि तुम ज़रा तकलीफ़ करो तो...जब मैंने तुम्हें ठेला देने का वचन दिया है, तो इतनी भलाई तो तुम्हें ज़रूर करनी चाहिये।'

'यह भी कहने की बात है! ज़रा अपनी लालटेन दो, इस अँधेरी रात में कहीं गिर पड़ूँ।'

'भाई, तुमने तो मुझे आफ़त में डाला! खेद के साथ कहना पड़ता है, लालटेन हाल ही की ख़रीदी हुई है। इस दुर्योग में कहीं टूट-फूट न जाय!'

'रहने भी दो, कोई हर्ज़ नहीं।'—बनवारी ने एक गाढ़ी चादर ओढ़ ली और उसी आँधी-पानी में डाक्टर के यहाँ चल दिया।

रात मानो प्रलय की थी। तूफ़ान उसे मृत्यु यंत्रणा दे रहा था। मगर वह साहस का पुतला बिना कहीं ज़रा देर रुके तीन घंटे में डाक्टर के यहाँ पहुँचा और द्वार की कुंडी खटखटाई।

अंदर से डाक्टर साहब ने पूछा—'कौन?'

'मेरा नाम बनवारी है।'

'इतनी रात को?'

'आपको चलने की तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। रघुवीर का लड़का ज़ीने से गिर कर बेतरह घायल हो गया है।'

'अच्छा, मैं तैयार हो लूँ।'—साईस से घोड़ा मँगवा कर डाक्टर साहब चल पड़े। बनवारी सड़क पर फिर अँधकार में जा मिला।

मूसलाधार वृष्टि होने लगी। हवा प्रबल वेग से झोंके ले रही थी। अंधकार में हाथ को हाथ नहीं दिखाई देने लगा। सहसा फिसलन में बनवारी के पाँव झूठे हो गये और वह एक अथाह जल-वाली खाई में जा रहा।

दूसरे दिन कुछ चरवाहे बालकों ने देखा, बनवारी की लाश पानी में उतरा रही है। लाश को पानी से निकाल कर वे ले गये। टोले-मुहल्ले के लोग लाश के अंतिम संसकार के लिये तैयार हुए, लेकिन अंतिम संस्कार की विधियाँ कौन करे, मुश्किल इसी की पड़ी। इतने में—'बनवारी मेरा दिली दोस्त था, इसलिये यह भार मेरा है।'—कहता हुआ रघुवीर आ दाख़िल हुआ।

कोई बोला—'बनवारी की मृत्यु से हम लोगों की बड़ी क्षति हुई!' कनखियों से उसे ताककर रघुवीर ने कहा—'हमारी हानि के आगे तुम्हारी हानि की क्या विसात है? और तुम्हारी हानि भी क्या हुई होगी। मैंने तो उसे ठेला देने को कहा था, कहा क्या था, एक तरह से दे ही चुका था। अब मैं उसे लेकर करूँ भी तो क्या? उसकी मरम्मत भी नहीं की जा सकती, बेचने पर कोई दो पैसे भी न देगा। ख़ैर, ठोकर खाकर सीख तो गया। त्याग करके दान करने से क्षति का भागी होना होता है। अब से मैं कभी किसी को कुछ न दूँगा।' "

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पंडुक ने एक लंबी साँस ली। फुलसुंघी बोली—"कहानी शेष हुई।"

विस्मित होकर पंडुक ने पूछा—"और यह तो बताया ही नहीं कि रघुवीर का क्या हुआ?"

"उसकी बाबत मुझे इससे अधिक नहीं मालूम और न जानने की उत्सुकता ही होती है।"

"शायद तुममें सहानुभूति का मादा है ही नहीं।"—पंडुक ने ऊँची आवाज में कहा।

फुलसुंघी बोली—"मालूम होता है, तुम कहानी की जड़ ही नहीं समझ सके।"

पंडुक ने पूछा—"वह क्या?"

"उपदेश।"

"तो तुम्हारे कहने का मतलब क्या है कि सभी कहानियों में उपदेश रहना ही चाहिये?"

"बेशक, फिर यह देखना तो है कि उससे हमने क्या सीखा।"

पंडुक ने क्रोधित होकर कहा—"अगर यह तुमने पहिले ही कहा होता तो मैं तुम्हारी कहानी हर्गिज नहीं सुनता।" और वह पानी में डूब गया।

बत्तख ने फुलसुंघी से पूछा—"यह पंडुक तुम्हें कैसे जँचा?"

"सद्गुण तो उसमें हैं; पर आजीवन अविवाहित रहने के कारण माँ-बाप के हृदय का उसे अनुभव ही नहीं। कहानी में उपदेश है, यह कह कर मैंने रङ्ग में भङ्ग कर दिया।"

"इस तरह की कहानी कहना आसान नहीं है।" अपनी राय देकर बत्तख भी पानी में तैरने लगी।

—आस्कर वाइल्ड।

कहानियों के दो अपूर्व संग्रह

भ्रम

(लेखिका श्रीमती यशोदा देवी) सभी कहानियां भावपूर्ण, सुन्दर और रोचक हैं।

मूल्य केवल १॥) रु०

'हत्यारे' का ब्याह

(लेखक—मुन्शी कन्हैया लाल) हिन्दी में यह कहानियां एक अपूर्व चीज हैं। पढ़ने ही से इनका आनन्द मिलेगा।

मूल्य—१॥) रु०

मिलने का पता :—

माया कार्यालय, इलाहाबाद।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संगम

(श्री कुंजविहारीलाल)

इलाहाबाद की 'मून विला' में केवल दो प्राणी रहते थे। रमेश और उसकी छोटी बहिन प्रभा। रमेश इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में एम० ए० में पढ़ता था और प्रभा 'क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल' में। रमेश के माता-पिता का स्वर्गवास बहुत दिन पहिले हो चुका था। घर पर धनधान्य की कमी नहीं थी। पर वह अभी अविवाहित था। सम्बन्धियों ने कई बार उससे विवाह का प्रस्ताव किया परन्तु उसने सबको यह कह कर टाल दिया था कि, 'मैं पहिले प्रभा का विवाह कर लूँ, फिर अपनी फ़िक्र करूँगा।' रमेश प्रभा को सचमुच बहुत प्यार करता था। वह उसकी स्वर्गीया माता की जीती-जागती तसवीर थी। जब कभी वह प्रभा का दुःख भरा चेहरा देखता तो उसके नेत्रों के सामने माता की मृत्यु-शैय्या की तसवीर खिंच जाती। उसे मालूम होता कि जैसे माता दुःखपूर्ण चेहरे से कह रही है "रमेश मैं तो जाती हूँ लेकिन प्रभा—मेरी बेटी रही। देखो, उसे तकलीफ़ न हो।"

रमेश का एक मित्र था, प्रकाश। उसकी अवस्था बाईस-तेईस बर्ष की थी। देखने में सुन्दर और बलिष्ठ युवक था। पिता के मरने के बाद उनकी सारी जायदाद का एक मात्र स्वामी हुआ था। एक दिन वह रमेश से मिलने उसके घर गया। रमेश उस समय बंगले में नहीं था। नौकर ने ड्राइंग रूम खोल दिया और प्रकाश बैठकर एक अख़बार पढ़ने लगा। थोड़ी देर बाद रमेश की मोटर पोर्टिको में आकर रुकी। प्रकाश 'हलो रमेश!' कहता हुआ बाहर निकल आया; परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब उसने देखा कि मोटर से उतरने वाला रमेश नहीं, एक लड़की थी! प्रकाश प्रभा को नहीं पहिचानता था, फिर भी शराफ़त के नाते उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। प्रभा ने भी नमस्कार किया। दोनों की आँखें चार हुईं। प्रकाश ने सिर नीचा कर लिया और प्रभा शरमा कर भीतर चली गई। बस यही दोनों का प्रथम साक्षात्कार था। प्रकाश फिर भीतर जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद रमेश आ गया। आते ही उसने पूछा, "कितनी देर हुई तुम्हें आये?"

"नहीं, देर नहीं हुई, अभी आया हूँ।"—प्रकाश ने उत्तर दिया।

"कैसे चले आये?"

"योंही, मिलने चला आया। कोई काम नहीं था।"

नौकर ने आकर ख़बर दी—"सरकार, चाय तैयार है।"

रमेश बोला—"चलो नाश्ता कर लो।"

"मैं? मैं तो खाकर आया हूँ।"

"चलो, बनो मत!"

दोनों नाश्ता करने अन्दर गये। सब चीज़ें टेबिल पर अच्छी तरह से सजाई हुई थीं।

"प्रभा कहाँ है?"

"अन्दर हैं, सरकार!" नौकर ने उत्तर दिया।

"क्यों? क्या वह नाश्ता नहीं करेगी? उसको बुला लाओ।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थोड़ी देर बाद प्रभा ने दरवाज़े पर आकर पूछा—"क्यों भैया, आपने मुझे बुलाया है ?"

"हाँ आओ, अरे तुम शरमाती हो ! यह प्रकाश है मेरा बहुत बड़ा दोस्त ! और प्रकाश, यह मेरी छोटी बहिन प्रभा है।"

फिर दोनों ने हाथ जोड़ कर एक दूसरे को नमस्कार किया। दोनों की आँखें फिर चार हुईं। प्रभा ने शरमा कर सिर नीचा कर लिया और एक कुर्सी पर बैठ गई। नाश्ता करके प्रकाश चला गया।...

प्रभा अतीव सुन्दरी थी। इकहरा गोरा बदन और बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें। वयः सन्धि की स्वर्ण देहली पर झाँक रही थी। रात में भोजन करने के बाद वह अपने कमरे में लेटी हुई थी। उसके सामने बार-बार प्रकाश का सुन्दर चेहरा आ रहा था। वह बहुत प्रयत्न कर रही थी कि प्रकाश को भूल जाय। ध्यान बदलने के लिये एक पुस्तक पढ़ने लगी; परन्तु प्रकाश का सुन्दर चेहरा उसके सामने से न हटा। सच बात यह थी कि उसके हृदय में प्रेम का अंकुर जम चुका था।

और उधर प्रकाश का भी यही हाल था। उसकी समझ में न आता था कि वह घटना स्वप्न थी या सच। उसके हृदय में प्रभा ने स्थान कर लिया था। प्रभा को भूलने के लिये—केवल भूलने के लिये—अब वह कालेज की सभा सोसायटियों में विशेष रूप से भाग लेने लगा था। परन्तु वह फिर भी प्रभा को न भूल सका।

... ...

इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में 'कवि सम्मेलन' था। शहर के सभी प्रमुख कवि इकट्ठे हुए थे। बहुत से कालेज के विद्यार्थियों ने भी कवियों की लिस्ट में अपना नाम दिया था। अपार भीड़ थी। ठीक तीन बजे सम्मेलन आरंभ हुआ। अनेक कवियों ने तथा विद्यार्थियों ने अपनी अपनी रचनायें सुनाईं। कोई शृंगार रस का प्रेमी निकला तो कोई वीर रस का। किसी ने करुण-रस की रचना पढ़ी तो किसी ने हास्य-रस की। सब के समाप्त हो जाने पर सभापति महोदय बोले—"कोई और महाशय कुछ कहना चाहते हैं ?"

प्रकाश ने खड़े होकर अपनी कविता पढ़ने की अनुमति माँगी।

"आप पढ़ सकते हैं।"—सभापति ने कह दिया—और प्रकाश मंच पर खड़ा हुआ। अचानक उसने देखा कि, ऊपर की गैलरी में प्रभा भी बैठी हुई है उसने कविता पढ़ना आरंभ किया।

सुनने वाले स्तब्ध हो गये। उसकी कविता में माधुर्य था। शैली में सुन्दरता थी, वाणी में जादू था। जनता मुग्ध हो गई। वह कवि के साथ रोती थी और उसी के साथ हँसती थी। फिर कविता समाप्त हुई। 'वन्स मोर-वन्स मोर !' का शोर मच गया। सभापति ने सब को शान्त करते हुए दोबारा पढ़ने की आज्ञा दी। कविता दोबारा समाप्त हुई। और सभापति-पुरस्कार का निर्णय करने लगे। कवियों के हृदय ज़रा तेज़ी से धड़क रहे थे। हाल में पूर्ण शान्ति थी। थोड़ी देर बाद सभापति निर्णय सुनाने के लिये खड़े हुए। लोग थोड़ा और आगे बढ़ आये। सभापति गम्भीर आवाज़ में बोले—"मैं प्रथम पुरस्कार श्री प्रकाश चन्द्र श्रीवास्तव को देता हूँ।" और तालियों की कड़कड़ाहट के बीच उन्होंने एक सुनहला 'कप' उठा कर प्रकाश के हाथों में दे दिया। उसकी छाती गर्व से फूल उठी। जनता की ओर देखा, फिर प्रभा से आँखें चार हुईं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शरमा कर सिर नीचा कर लिया। प्रभा के हृदय में प्रकाश का चित्र मानो कुछ और साफ़ हो गया। वह बाहर निकला। मित्रों ने बधाइयाँ दीं। कवि मित्रों ने व्यंग किया—"यार, तुम तो छिपे रुस्तम निकले!"

... ...

प्रेम अंधा होता है। उसका विकास बढ़ती हुई नदी के वेग के समान होता है। प्रकाश और प्रभा भी इस प्रवाह में अनन्त की ओर बहने लगे। आकर्षण प्रकाश को प्रभा की ओर खींचे लिये जाता था। दोनों ही एक दूसरे से अनजाने प्रेम करने लगे थे और दोनों ही उसके सुखद अथवा दुःखद परिणाम से अनभिज्ञ थे।

एम० ए० फ़ाइनल की परीक्षा पास थी। रमेश और प्रकाश, दोनों कड़ी मेहनत कर रहे थे। अन्त में परीक्षा आरंभ हुई और समाप्त भी हो गई। पर्चे अच्छे हुए थे। इसके बाद मंसूरी जाने की ठहरी और तीसरे दिन तीनों मंसूरी के लिये रवाना भी हो गये। वहीं उन्हें परीक्षा फल मालूम हुआ। दोनों अच्छी श्रेणी में पास हुए थे।...

एक दिन होटल के एक कमरे में दोनों मित्र बैठे हुए थे। प्रभा थोड़ी दूर पर बैठी एक किताब पढ़ रही थी। कमरे में पूर्ण शान्ति थी। रमेश ने प्रकाश से कहा—"प्रकाश, एक बात कहूँ?"

प्रकाश का हृदय ज़रा तेज़ी से धड़कने लगा। उसने कहा—"क्या कहना चाहते हो रमेश!" प्रभा पुस्तक से मुँह छिपाकर उनकी बात सुनने लगी।

"यह कि तुम्हें मेरा घर देखना पड़ेगा।"

"मुझे! क्यों!"

"क्योंकि मैं इंगलैण्ड जा रहा हूँ।"

"कब भैया?"—प्रभा ने चौंक कर पूछा।

"इलाहाबाद लौटने पर।"

"क्या सच रमेश!" प्रकाश ने पूछा।

"हाँ प्रकाश, तुम जानते हो कि दुनिया में तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। भाई सम्बन्धी जो कुछ हो वह तुम्हीं हो। तुम्हें ही प्रभा की देखभाल करनी होगी। बोलो, मंज़ूर है तुम्हें?"

"रमेश, मैंने कभी तुम्हारी बात टाली है?"—प्रकाश ने कह दिया।

... ...

रमेश ने हवाई जहाज़ से इंगलैण्ड जाना निश्चय किया था। बमरौली एयरो-ड्रोम पर दोनों मित्र खड़े हुए थे। डच प्लेन के छूटने में केवल सात मिनट की देरी थी। जहाज़ ने जाने का पहिला सिगनल दिया। प्रभा रो पड़ी। रमेश के नेत्रों में भी जल भरा था। उसने प्रभा के आँसू अपने रुमाल से पोंछते हुए कहा—"रोओ मत प्रभा! तुम किसी बात की फ़िक्र मत करना। जिस चीज़ की ज़रूरत हो प्रकाश से कह देना; शरमाना मत। हर हफ़्ते में ख़त लिखती रहना।"

"लिखती रहूँगी भैय्या, तुम भी लिखना!" सिसकती हुई प्रभा ने कहा।

जहाज़ ने जाने का दूसरा सिगनल दिया। रमेश दौड़ कर जहाज़ में बैठ गया और थोड़ी देर बाद जहाज़ यात्रियों को लिये हुए आकाश में द्रुतगति से उड़ गया। प्रभा जहाज़ की ओर देख रही थी।

प्रकाश बोला "चलिये।"

"हाँ, चलिए।" प्रभा ने अवरुद्ध कंठ से कहा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस दिन प्रभा दिन भर रोती रही। सन्ध्या समय प्रकाश उससे मिलने आया। उसने देखा कि, दिन भर रोने के कारण प्रभा की आँखें लाल हो रही हैं, तो बोला "देखिये, आप पढ़ी-लिखी हैं। यदि आप ऐसे ही दिन भर रोया करेंगी तो कैसे काम चलेगा ?"

प्रभा ने भरे स्वर में कहा—"क्या करूँ, भैया के बिना तबियत नहीं लगती !"

"तबियत बहलाने की कोशिश कीजिये, तबियत लगेगी कैसे नहीं। शाम हो रही है —चलिये पार्क में टहल आइये, तबियत हरी हो जायगी !"

"नहीं, आज मुझे क्षमा कीजिये। कहीं जाने की तबियत नहीं करती।"

प्रकाश ने अधिक ज़िद करना उचित न समझा और कुछ समय तक बैठकर वह लौट आया।

... ...

अपने ड्राइंग रूम में बैठा हुआ था कि अचानक प्रभा ने प्रवेश किया। प्रकाश ने उठ कर नमस्कार करते हुए कहा—"आइये, कहिये रमेश की कोई चिट्ठी आई ?"

"इधर तो नहीं, पिछले हफ़्ते में आई थी।" प्रभा ने नमस्कार कर के बैठते हुए कहा—"आज मैं आप से एक ख़ास बात कहने के लिये आई हूँ।"

"शौक से कहिये।" प्रकाश बोला।

"अप मुझको 'आप' न कह कर 'तुम' कहा कीजिये।"—प्रभा बोली।

"क्यों ?"

"क्योंकि आप मुझसे बड़े हैं।"—प्रभा ने मुसकराते हुये उत्तर दिया।

"बहुत अच्छा, आप भी मुझको 'आप' न कहा कीजिये।"

"क्यों ? मैं क्यों न कहा करूँ ?"

"क्यों कि आप मुझसे छोटी हैं !"

दोनों हँस पड़े।

प्रभा बोली—"चलिये सिनेमा देख आयें !" तब फिर दोनों सिनेमा देखने चले गये।.....

दूसरे दिन प्रकाश प्रभा के बङ्गले पर गया। प्रभा ने ऊपर बारजे पर से देखा। वह दौड़ कर अन्दर आई और प्रकाश के बङ्गले के अन्दर घुसते ही छिप कर उसका 'स्नैपशाट' ले लिया। प्रकाश आया और थोड़ी देर बातें कर के चला गया। प्रभा ने उस फ़ोटो को अपने हाथों ही डेवलप और प्रिन्ट किया। चित्र बहुत ही साफ़ आया था। प्रभा अपने कमरे में बैठ कर उसे देखने लगी और देखने में तल्लीन हो गई और उसने अपनी क़लम से उस के नीचे लिख लिया—'प्यारे !' फिर धीरे से उसे उठाकर हृदय से लगा लिया !

... ...

रमेश आने वाला था। उसने प्रभा को लिख दिया था, परन्तु फिर भी उसने प्रकाश को नहीं बतलाया। हवाई जहाज़ एयरोड्रोम पर पहुँचा और रमेश बाहर आया। प्रभा ने आगे बढ़ कर उसे नमस्कार किया। रमेश ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "क्यों प्रभा अच्छी तो रहीं ?"

"हाँ बहुत अच्छी तरह !" दोनों मोटर से घर आये।

उसी दिन दोपहर को खाना खाने के बाद प्रकाश अपने कमरे में लेटा हुआ था। अचानक रमेश की मोटर ने अहाते में प्रवेश किया। शोफ़र ने उतर कर दरवाज़ा खोल दिया और रमेश बाहर निकला। प्रकाश 'हलो रमेश !' कहता हुआ दौड़कर उससे लिपट गया। रमेश बोला—"क्यों अच्छे तो रहे ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"बहुत अच्छी तरह से; तुमने आने की ख़बर तक न दी !"

"लिख तो दिया था। क्या प्रभा ने तुमको नहीं बतलाया ?"

"बिलकुल नहीं। ख़ैर चलो बैठो ?" दोनों अन्दर जाकर बैठ गये।

"तुमको एक ख़ुश ख़बरी सुनाऊँ !" रमेश बोला।

"सुनाओ।"

"प्रभा की शादी होने वाली है।"

प्रकाश का चेहरा सूख गया। उसने अपने मुँह पर ज़बरदस्ती हँसी लाने की चेष्टा करते हुए पूछा—"कब ?"

"बस अगले हफ़्ते में।"—रमेश अपनी ही धुन में कहने लगा, "मेरे साथ अविनाश नाम का एक युवक आई० सी० यस० होकर आया है। मै देर नहीं करना चाहता। मेरा इरादा अगले हफ़्ते में शादी कर देने का है। समय बहुत कम है और सारा इन्तज़ाम तुम्हीं को करना है। तुम जानते हो कि मुझसे कोई काम नहीं हो सकता। कल निमन्त्रण पत्र छपने को दे दो। देखो, किसी बात की कमी न होनी चाहिये। यह मेरे जीवन की पहिली साध है !"

... ...

यह शादी की बात प्रभा ने भी सुनी। उसके ऊपर जैसे बिजली गिर पड़ी। स्वप्न में भी ध्यान न था कि उसका विवाह प्रकाश के साथ न होगा। उसने निश्चय किया कि वह सब कुछ ठीक-ठीक रमेश से जाकर कह देगी। सो वह रमेश के कमरे में पहुँची। रमेश उस समय कोई ख़त लिख रहा था। प्रभा ने पुकारा, "भैय्या ?"

"क्या है प्रभा, आओ !" रमेश ने बिना सिर उठाये ही कहा।

पर वह रमेश से कुछ न कह सकी। उसने जो जो बातें कहने के लिये सोची थीं, सब भूल गई।

"क्या है, प्रभा ?"—रमेश ने फिर पूछा।

"मैं...मैं आज सिनेमा देख आऊँ ?" प्रभा ने बात बदलते हुए कहा।

"जाओ।"

और वह उठकर चली गई।

उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे। सोचा, विमला से कहला दूँ। विमला उसकी सखी थी। हाँ, स्वयं कहने से, उससे कहलाना ठीक होगा। सो उसने विमला को फ़ोन किया—"फ़ौरन आओ। ज़रूरी काम है।"

थोड़ी देर बाद विमला आ गई। आते ही बोली—"क्यों, कौन सा ज़रूरी काम है ?"

"बैठो, बहुत ज़रूरी काम है। देखो, मैंने आज तक तुमसे कोई बात नहीं छिपाई है। मैं चाहती हूँ कि..."

"कि मैं अविनाश से विवाह कर लूँ ! क्यों, यही न !"

"हाँ मैं यह चाहती हूँ कि तुम अविनाश से विवाह कर लो।"

"पागल हो तुम ! यही ज़रूरी काम था ?"

"नहीं, वह दूसरा था।"

"वह क्या ?"

"चलो फ़िल्म देख आवें।"

"चलो न !"

दोनों फ़िल्म देखने गईं।"

... ...

रमेश अपनी माता का चित्र इन्लार्ज कराना चाहता था। उसके पास माता की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक ही तसवीर थी और वह थी प्रभा के पास। वह उसे प्रभा से माँगना भूल गया था। और आर्टिस्ट को उसी दिन बुलाया था। आर्टिस्ट आ गया। रमेश चित्र लेने प्रभा के कमरे में गया। बहुत ढूँढ़ने पर भी वह चित्र बाहर न मिला। हार कर उसने प्रभा का सूटकेस खोला। जल्दी-जल्दी कपड़े उलटते हुए, प्रकाश के चित्र पर उसकी नज़र पड़ी। उसने चित्र निकाल लिया और उसे देखने लगा। देखा कि चित्र के नीचे लिखा हुआ है, 'प्यारे!' तब वह धीरे से मन ही मन बोला 'हूँ! अच्छा ऐसा ही होगा!' माँ का चित्र निकाल कर, प्रकाश का चित्र उसी भाँति रख कर सूट-केस बन्द कर दिया। चित्र बाहर लाकर आर्टिस्ट को दे दिया। आर्टिस्ट चला गया। रमेश बैठ कर सोचने लगा—'प्रभा की शादी प्रकाश से ही होनी चाहिये। दोनों ज़रूर एक दूसरे से प्रेम करते हैं। अब समझ में आया कि उस दिन प्रकाश क्यों ऐसा होने लगा था। अच्छा, अच्छा कोई बात नहीं है, ऐसा ही होगा।'

फ़िल्म देख कर प्रभा बंगले पर पहुँची और अपने कमरे में बैठ कर सोचने लगी—'मैं क्या करूँ। मैं जानती हूँ कि मेरी शादी होने पर प्रकाश की वही हालत होगी जो उस 'नायक' की हुई। उफ़! यह असह्य है। विवाह के केवल चार दिन और हैं। अब.....अच्छा चलूँ, भैय्या सो गये होंगे। अँधेरे में जगा कर सब बात कह दूँ।' वह गई परन्तु उसने देखा कि रमेश लैम्प जलाये कोई पुस्तक पढ़ रहा है। तब वह कुछ न कह सकी और लौट आई। कमरे में आकर बहुत सोचने के बाद उसने एक पत्र लिखा :—

"आज तक आपने मुझे किसी प्रकार से दुःखी नहीं होने दिया है। आज मैं आपसे लाज छोड़ कर अपने हृदय की बात कहती हूँ कि मैं प्रकाश को प्यार करती हूँ। कहीं दूसरी जगह मेरी शादी होने पर प्रकाश का जीवन भी बरबाद हो जायगा और मैं भी सुखी न रह सकूँगी। आप बड़े हैं। बुद्धि-मान हैं। समझ बूझ कर काम कीजिये।" पत्र तकिये के नीचे रखकर वह सो गई।

प्रातःकाल उसने एक बार पत्र को फिर पढ़ा और रमेश को देने चली, परन्तु न जाने क्या सोचकर उसने पत्र फाड़ कर फेंक दिया और कमरे में लौट आई। नाश्ता करने के बाद, वह फिर रमेश के कमरे की तरफ़ चली। इस बार निश्चय कर लिया था कि वह रमेश से सब कुछ कह देगी। उसने दरवाज़े पर से पुकारा—"भैया!"

"हाँ प्रभा, आओ। तुम से कुछ कहना है। कई दिनों से मैं तुम्हें म्लानमना और चिन्ता में देखता हूँ। प्रकाश तुम्हें मिल जायगा—उसकी चिन्ता तो करना मत!"

प्रभा ने शरमा कर सिर नीचा कर लिया। कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ गई। वह उठ कर तेज़ी से अपने कमरे में चली आई। और रमेश वहाँ से उठ कर पैदल ही प्रकाश के बङ्गले पर पहुँचा। प्रकाश अपने कमरे में बैठा गुनगुना रहा था—'पीर पीर क्यों करता रे तेरी पीर न जाने कोय!'

"प्रकाश!" रमेश ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "कौन सी पीर है जो कोई नहीं जानता?"

"पागल हो तुम!"

"अच्छा जाने दो इन बातों को पहिले।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बतलाओ कि निमंत्रण पत्र छप गया ?"

"नहीं, शाम को मिल जायगा। प्रूफ़ आ गया है।" प्रकाश ने उसे दे दिया।

रमेश ने उसे ले लिया। फिर बोला—"कपड़ों के बारे में क्या हुआ ?"

"आज शाम को आजायेंगे।"

"अच्छा, अब मैं चलता हूँ, लेकिन भाई शादी तक के लिये इस पीर को दिल से निकाल डालो !" रमेश बोला।

"चाँटा खाओगे तुम !"

वहाँ से चल कर रमेश अविनाश के यहाँ पहुँचा और उससे बड़ी देर तक जाने क्या बातें करता रहा।

... ...

आज प्रभा की शादी है। रमेश के घर बड़ी चहल पहल है। प्रकाश सवेरे ही से काम में व्यस्त है। सन्ध्या समय अविनाश अपने कपितय मित्रों के साथ आया। रमेश ने उससे प्रकाश का परिचय कराया। थोड़ी देर बाद अविनाश विवाह के लिये भीतर जाने लगा। वह जबरदस्ती प्रकाश को भी अपने साथ ले गया। मंडप में प्रभा फूलों का हार लिये हुए खड़ी थी। दोनों के पास पहुँचते ही उसने माला प्रकाश के गले में डाल दी। प्रकाश अवाक् रह गया। वह घबड़ा कर बोला—"अरे, अविनाश यह हैं !"

"लेकिन अब तो वह आपकी हो चुकी।" अविनाश ने हँसते हुए कहा।

... ...

चाँदनी खिली थी। दोनों छत पर बैठे हुए थे। प्रभा ने अपनी साड़ी के अन्दर से एक चित्र निकाल कर दूर से दिखलाते हुए पूछा—"बतलाओ, यह किसका चित्र है ?"

"देखूँ !" प्रकाश ने हाथ बढ़ाया।

"मैं नहीं देती !" प्रभा ने मुसकराते हुए कहा।

"दोगी कैसे नहीं !" प्रकाश ने दौड़ कर धीरे से उसके हाथों से चित्र छीन लिया। प्रभा हँसती हुई कमरे में भाग गई। प्रकाश उसे चाँदनी में देखने लगा। नीचे सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था—'प्यारे !'

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार घड़ियाँ

(श्री शान्ता जौहरी)

वह बड़े घर का बेटा था। पिता के पास बहुत बड़ी ज़िमीदारी थी। अवस्था उसकी अधिक से अधिक बीस वर्ष की होगी। लखनऊ विश्व-विद्यालय में वह बी० ए० का विद्यार्थी था। नाम था विपिन।

वह बहुत सुन्दर युवा था। स्वस्थ गठा हुआ शरीर, हृष्ट-पुष्ट हाथ-पैर, चौड़ा मस्तक, उठा हुआ वक्षःस्थल, गोरा रंग, बड़े-बड़े कमल जैसे नेत्र, किसी को भी वश में कर सकते थे। कितनी ही युवतियाँ मन ही मन उससे प्रेम करती थीं; परन्तु वह किसी ओर आँख उठा कर नहीं देखता था। कितने हृदयों को उसने अनजाने ही अपने रंग में रंग कर छोड़ दिया था; परन्तु उसे कोई भी हृदय अपने वश में नहीं कर सका। बहुत-से उसके मित्र थे; परन्तु उसका सच्चा मित्र था सतीश। दोनों में बहुत पटती थी। आज तक विपिन को किसी ने सतीश के साथ उदास नहीं देखा था।

... ...

गर्मी के दिन थे। कालेज की छुट्टियाँ हो गई थीं। विपिन प्रतिदिन गोमती-तट पर स्नान करने जाता और घंटों वहाँ अपने उसी मित्र के साथ तैरा करता। तैरने में और कोई साथी उसकी बराबरी कर भी नहीं सकता था। एक दिन वह अकेला आया; तैरते-तैरते बहुत दूर निकल गया। उधर से लौटने में देर हो गई—वह शीघ्रता से लौटा; तैर कर अपने किनारे तक आया। पर वहाँ एक युवती को बैठा देख, वह ठिठक रहा। आज तक शायद उसने ऐसा मनोहर रूप कहीं नहीं देखा था। मालूम होता था कि वह युवती भी अभी नहा कर बैठी थी। उसकी अवस्था अनुमान से पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी। विपिन बड़ी देर तक उस रूप-राशि के दर्शन करता रहा, परन्तु फिर भी उस युवती का उसकी ओर तनिक भी ध्यान न गया। वह बैठी-बैठी कुछ गुनगुना रही थी। अचानक ही उसकी आँखें उठ गईं और सामने जल में एक ऐसे बलिष्ठ, सुन्दर युवक को अपनी ओर निहारते देख कर लज्जित हो गई। उसने झटपट उधर को अपनी पीठ कर ली। अब विपिन को शैतानी सूझी, वह तैरता हुआ फिर उसके सामने चला गया। युवती उधर से भी पीठ फेर कर बैठ गई। विपिन फिर हँस कर उसके मुख के सामने आ गया। अब उसके लाल-लाल पतले होठों पर भी मुसकराहट की रेखा खिंच गई; विपिन ने देख लिया। पर युवती उसी समय उठ कर चली गई। जब तक वह विपिन के नेत्रों के सामने से ओझल नहीं हुई, बराबर वह एकटक उसी ओर ताकता रहा।

उस दिन फिर विपिन का किसी काम में मन न लगा। जब वह किसी काम को हाथ लगाता तो उसके नेत्रों के आगे वही सुन्दर मूर्त्ति आकर खड़ी हो जाती। और विपिन सोचता—वह कौन थी? परन्तु उसे इसका उत्तर कौन देता? अब उसे बड़ा पश्चात्ताप होने लगा कि उसका नाम तक नहीं पूछा! न मालूम कल वह आयेगी या नहीं?

विपिन को दिन काटना कठिन हो गया; रात भी करवटें बदलते कटी। दूसरे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिन वह अकेला ही प्रतिदिन की भाँति फिर गोमती तट पर गया; परन्तु हाय, उस सुन्दरी के दर्शन नहीं हुए! एक-दो-तीन-चार-पाँच दिन व्यतीत हो गये। उसे वह सुन्दरी नहीं दिखाई दी; अन्त में वह उस ओर से निराश हो गया।

उन दिनों लखनऊ में, ऐलफ़िंस्टन में, बाम्बे टाकीज़ का एक फ़िल्म आया था। उसी दिन बी० ए० का रिज़ल्ट आउट हुआ। विपिन फ़र्स्ट आया! वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह उस सुन्दरी को बिलकुल भूल-सा गया। सन्ध्या समय वह अपने मित्र सतीश के साथ सिनेमा गया। टिकट लिये गये और दोनों अन्दर पहुँचे। एकाएक विपिन की दृष्टि पास की एक 'सीट' पर पड़ी और वह देखते ही चौंका; यह वही सुन्दरी थी जिसके दर्शन उसे गोमती तट पर हुए थे! हृदय में एक प्रकार की उमंग सी उठी; परन्तु उसने वह भाव अपने मित्र पर प्रकट नहीं होने दिया। उस दिन सिनेमा-हाल में भीड़ बहुत थी, कहीं और जगह नहीं खाली थी, सिर्फ़ उसी सुन्दरी के पास तीन कुर्सियाँ थीं। सो सतीश और वह उन्हीं कुर्सियों पर जाकर बैठ गये। सुन्दरी और विपिन के बीच में सिर्फ़ एक कुर्सी का अन्तर रह गया। थोड़ी देर में, हटात् उस सुन्दरी की दृष्टि भी अपनी दाहिनी ओर गई और वह भी विपिन को देख कर चौंकी सी। साथ ही उसका मुख प्रसन्नता से खिल उठा, विपिन ने यह देख लिया। दोनों की चार आँखें हुईं तो सुन्दरी ने लज्जित होकर अपनी नज़र नीची कर ली। अब विपिन सतीश से बातें करता जाता और कनखियों से उसकी ओर भी कभी देख लेता। खेल शुरू होने में अभी दस मिनट की देरी थी। सतीश किसी काम से अचानक उठ कर बाहर चला गया, विपिन फिर उसकी ओर निहारने लगा। सुन्दरी खेल की पुस्तक पढ़ने में लीन थी। फिर भी कभी दोनों की आँखें चार हो जातीं। इतने में सुन्दरी बोल उठी, "भैय्या, खेल शुरू होने में कितनी देर है?"

विपिन ने देखा कि उसकी बग़ल में एक युवक बैठा है; परन्तु वह उसका मुख नहीं देख पाया।

युवक बोला—"अभी आठ मिनट हैं, शीला!"

विपिन के कान तो उधर ही थे; उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आज उसे इस रूपमयी का नाम भी ज्ञात हो गया। 'शीला कितना छोटा सा किन्तु प्रिय नाम है!' मन ही मन विपिन कहने लगा—'और कितनी मधुर बोली है इसकी!'

थोड़ी देर में वह युवक भी बाहर चला गया। अब शीला भी अकेली रह गई। विपिन नीची दृष्टि किये हुए कुछ सोच रहा था कि कुर्सी के पास कुछ सफ़ेद सफ़ेद सा पड़ा दीखा। उसने झट उठा लिया, वह और कुछ नहीं—रुमाल था। कोने पर किसी का नाम भी पड़ा था। उसने उसे ध्यान से देखा 'शीला' लिखा हुआ था। उसे यह शीला से कुछ बात करने की युक्ति दिखलाई दी, सो वह धीरे से बोला—"क्या यह रूमाल आपका है?"

शीला ने मुसकरा कर वह रुमाल ले लिया और बोली—"धन्यवाद!" विपिन का हृदय तो उससे बातें करने के लिये अकुला रहा था परन्तु अब कौन सी तरकीब निकाल कर वह उससे बातें करे? थोड़ी देर में सतीश आ गया। उसके साथ एक युवक भी था। और सतीश आते ही विपिन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से बोला—"यार, क्या तुम इन्हें पहिचानते हो ?" युवक को देखते ही विपिन प्रसन्नता से खिल उठा और बोला—"ओह श्याम सुन्दर ! तुम पञ्जाब से कब लौटे ?"

श्यामसुन्दर बोला—"सात-आठ दिन हो गये भाई, अपनी बहिन के साथ आया हूँ।" इतना कह कर उसने शीला की ओर इशारा कर दिया। वह सब देख रही थी। आज उसके मुख से ज्ञात होता था कि वह बहुत प्रसन्न है। श्याम सुन्दर कहता जा रहा था—"तुम दोनों का मैंने पता लगाया था परन्तु तुम मिले ही नहीं, फिर तीन-चार दिन से मेरी भी तबियत ख़राब हो गई थी, इसलिये तुम लोगों को न ढूंढ़ सका। आज शीला के कहने से ही सिनेमा देखने चला आया। अच्छा ही हुआ तुम लोग मिल गये, मेरी मेहनत बच गई।"

थोड़ी देर में खेल शुरू हुआ। बहुत अच्छा फ़िल्म था। दस बजे जब खेल समाप्त हुआ तो विपिन अपनी कार में उन लोगों को घर पहुँचा आया।

आज उसका हृदय ख़ुशी से उछल रहा था। श्यामसुन्दर उसका पुराना मित्र था, इण्टर पास करके उसने पढ़ना छोड़ दिया था, क्योंकि उसके पिता के पास बहुत बड़ी ज़िमीदारी थी। पञ्जाब में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी; बूढ़े हो गये थे इसलिये इतना बड़ा भार उनसे सँभलता नहीं था। फलतः उसका पढ़ना छुड़वा कर ज़िमीदारी का भार उसी को सौंप दिया। बड़ी कठिनता से वह दो महीने के लिये शीला को लेकर इधर घूमने आया था।

विपिन ने सोचा—चलो, अच्छा ही हुआ, इसी बहाने उसके दर्शन हो जाया करेंगे ! उसे अब यह ज्ञात हो गया कि श्यामसुन्दर अपनी बहिन को लखनऊ दिखाने लाया है और महीने दो महीने के बाद वे लाहौर चले जावेंगे। इसीलिये शायद क़रीब-क़रीब प्रतिदिन ही वह शीला के यहाँ जाता।

दिन व्यतीत होते देर नहीं लगती। महीना भर पूरा गया। विपिन के ऊपर प्रेम का रङ्ग प्रतिदिन चढ़ रहा था। कई दिन से वह शीला के विषय में सोच रहा था। अन्त में, एक दिन एकान्त में बैठ कर वह अपना हृदय टटोलने लगा, यह देखने के लिये कि शिला के प्रति उसकी यह बेचैनी अकारण है या मतलब से। तब विपिन ने जाना कि, शीला की सुन्दर मूर्ति चुपके से उसके हृदय के बीच आसन जमाये बैठी है ! अब तक उसे इसका ठीक पता न था कि शीला भी उससे प्रेम करती है या नहीं। पर आज उसे यह अवश्य ज्ञात हो गया कि शीला को प्राप्त करने ही से उसे वास्तविक सुख और शान्ति मिलेगी, अन्यथा उसका जीवन प्रेम की विफलता से निरन्तर दग्ध होकर मरुभूमि में सदृश हो जायेगा ! किन्तु शीला उसकी जाति की नहीं है ! ऐसी अवस्था में वह उसे कैसे अपना सकेगा ? सबसे बड़ी अड़चन उसे घर के लोगों की तथा समाज की थी। अब कभी कभी वह सोचता—क्यों वह शीला से इतना प्रेम बढ़ा रहा है ? कहाँ वह पञ्जाबी ब्राह्मण कहाँ मैं कायस्थ ! क्या मेरे पिता या उसके पिता या हमारा समाज यह अनुमति देगा कि मैं उससे शादी कर लूँ ? आह शीला, यदि तुम भी मेरी जाति की होतीं ! और अब वह पक्का निश्चय करता कि आज वह शीला के यहाँ नहीं जावेगा; परन्तु सन्ध्या होते ही उसके पाँव उस ओर अपने आप ही उठ जाते और शीला के घर पहुँच कर ही उसे सन्तोष होता। और इस प्रकार प्रतिदिन ही उसे शीला के दर्शन होते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और जितनी ही बार वह उसे देखता उतनी ही बार एक नये रूप में वह उसे दिखाई देती! अब वह उसके लिये एक पहेली हो गई थी।

शीला भी विपिन को देखती तो उसका मुखकमल खिल उठता। विपिन उसका यह भाव फ़ौरन ताड़ लेता था। परन्तु आज तक उन दोनों में कोई ख़ास बातचीत नहीं हुई थी। विपिन प्रति दिन यह निश्चय करके जाता कि आज उससे अवश्य बातचीत करूँगा। उधर शीला भी यही निश्चय करती। किन्तु दोनों सामने आते ही अपने-अपने निश्चय को भूल से जाते या दोनों का साहस ही नहीं पड़ता था।

... ...

विपिन पहिले की ही भाँति गोमती तट पर जाया करता परन्तु अब उसने तैरना छोड़ दिया था। गोमती तट पर बैठ कर शीला के विषय में सोचना भर अब उसका काम रह गया था। हर समय उसकी सुन्दर मूर्ति विपिन के नेत्रों में घूमती रहती। घर पर आ कर भी उसी के ध्यान में मग्न रहता। मित्र लोग देख कर आश्चर्य करते कि, विपिन इतना उदास क्यों रहता है? परन्तु वे बेचारे इसका सबब नहीं जान सकते थे। जो मनुष्य हर समय प्रसन्न, हँसता और दूसरों को हँसाता रहा हो यदि वह एक दम उदास और चुप हो जाये तो इसमें कोई गूढ़ रहस्य अवश्य होगा। सो कई मित्रों ने उससे पूछना चाहा, परन्तु असली कारण कोई नहीं जान सका।

शीला भी उसकी उदासी देखती। विपिन की यह दशा देख कर वह बहुत दुःखी होती, क्योंकि उसे इस उदासी का कारण कुछ-कुछ ज्ञात था। परन्तु फिर भी वह निश्चय नहीं कर सकती थी। वह उससे पूछना चाहती थी, पर आज तक वह उससे अच्छी तरह बोली नहीं थी, इसलिये लज्जा के कारण पूछ भी नहीं सकती थी।

... ...

एक दिन प्रति दिन की भाँति विपिन गोमती तट पर गया। वहाँ उसने शीला को बैठे देखा। वह प्रसन्नता से खिल उठा। आज उसे एकान्त में शीला से बातें करने का अवसर मिला है! उसने पक्का निश्चय कर लिया था कि आज वह अपनी व्यथा उसके सामने अवश्य प्रकट कर देगा। वह चुपचाप दबे पाँव जाकर उसके पीछे खड़ा हो गया। शीला को बिलकुल भी ज्ञात न हो सका कि, उसके पीछे कोई खड़ा है। इस समय वह बहुत उदास बैठी थी, नेत्र गोमती के जल में गढ़े से हुए थे, मानो किसी को ढूँढ़ रहे हों। आँचल अस्त-व्यस्त था। उभरा हुआ वक्षःस्थल बहुत ही भला मालूम होता था। इस समय वह बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ रही थी। आसमानी साड़ी में उसका रूप निखर उठा था। विपिन ने आज तक उसका ऐसा मनोहर रूप नहीं देखा था। वह बड़ी देर तक उसे निहारता रहा फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती थी। कई मिनिट व्यतीत हो गये। शीला उसी प्रकार बैठी रही, वह उसी प्रकार खड़ा रहा। अब उससे न रहा गया, क्योंकि वह यह अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। धीरे से आवाज़ दी, परन्तु शीला का ध्यान नहीं भंग हुआ। फिर धीरे से आवाज़ दी, "शीला!" तो शीला एक दम चौंक पड़ी, मानो सोते से जागी हो। झट से अपनी साड़ी ठीक की, पीछे विपिन को देखा तो बहुत लज्जित हुई।

विपिन उसे लज्जित देख कर बोला—"क्षमा करना शीला, मैंने तुम्हारे ध्यान में विघ्न डाला!"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह धीरे से बोली—"आप कब से खड़े हैं। मुझे तो मालूम ही नहीं हुआ। बैठिये!"

विपिन यह जानता था कि यदि मैं बहुत देर से खड़े रहने के विषय में बता दूँगा तो वह और भी शरमिन्दा होगी, इसलिये कहा, "अभी ही आया हूँ लेकिन तुम उदास क्यों हो?"

"मैं! मैं तो उदास नहीं हूँ! आप ही बहुत उदास रहते हैं। क्या मैं उसका कारण पूछ सकती हूँ?"

विपिन चुपचाप बैठा रहा। उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

शीला नम्रता से बोली, "आप चुप क्यों हो गये? क्या आप मुझे नहीं बताना चाहते?"

विपिन ने एक ठण्डी साँस ले कर कहा—"क्या करोगी शीला, किसी के हृदय की बात पूछ कर!"

शीला विह्वल होकर बोली—"क्या मैं इस योग्य भी नहीं कि आपकी बात पूछ सकूँ?" फिर आँखों में आँसू भर कर कहने लगी, "मैं आज १०-१५ दिन से बराबर आपको उदास देख रही हूँ। क्या बात है यह क्या आप मुझे नहीं बतलायेंगे?"

विपिन तो पहिले से ही सोच कर आया था कि वह अपने हृदय की व्यथा उसके सामने प्रकट कर देगा, सो दुःख भरे स्वर में बोला—"हृदय को हृदय ही जान सकता है! शीला, तुम्हें क्या बताऊँ, तुम तो सब कुछ जानती ही हो, अपने हृदय से पूछो!"

शीला सब कुछ समझ गई थी। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उसे चुप देखकर वह बोला—"शीला, आज मैं तुम्हारे सामने अपने हृदय की व्यथा प्रकट करने ही आया हूँ। बुरा न मानना शीला, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ उसी दिन से जिस दिन मुझे गोमती तट पर तुम्हारे प्रथम दर्शन हुए थे। मैंने बहुत चाहा कि मेरा प्रेम तुम पर प्रकट न हो, लेकिन क्या करूँ यदि मैं तुम पर प्रकट न करता तो अवश्य पागल हो जाता। यह मैं जानता हूँ कि व्यर्थ मैं बौना होकर चाँद छूने का प्रयत्न कर रहा हूँ, लेकिन तुम इतनी हृदय-हीन नहीं हो।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। सहसा विपिन कह उठा, "शीला, मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ!"

विवाह के नाम ने शीला को चौंका दिया। हृदय में सहसा एक ऐसा भयानक तूफान सा उठा कि वह उसके झोंके से सिर से पैर तक काँपने लगी। लेकिन वह चुप थी, कोई उत्तर नहीं दे सकी। विपिन ने उसके मौन-भाव और आकृति को देख कर समझा कि शायद वह नाराज हो गई है। वह शीला का हाथ पकड़ कर कहने लगा—"शीला, तुम नराज़ हो गईं! खैर नाराज़ होने की बात ही है। कहाँ तुम कहाँ मैं। परन्तु क्या तुम मुझे अपना एक छोटा सा चित्र भी नहीं दे सकतीं? मैं उसी के दर्शन करके अपना शेष जीवन व्यतीत कर दूँगा!"

विपिन के स्पर्श करने से उसके शरीर और मन दोनों ही में एक बिजली की सी लहर दौड़ गई। आज तक किसी पुरुष से उसका शरीर स्पर्श नहीं हुआ था। शीला का मुख लज्जा से लाल हो उठा। वह अपने को सँभाल कर, धीरे-धीरे विपिन से अपना हाथ छुड़ाती हुई बोली—"आपके लिये जाने कितनी कुमारियाँ प्राण देने को तैयार हैं; आपके साथ विवाह करके कोई भी कृतार्थ होगी। मैं पंजाबिन हूँ, आप कायस्थ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुल के हैं। मेरे साथ विवाह करके व्यर्थ क्यों समाज और माता-पिता की आँखों में अपमानित होना चाहते हैं।"

विपिन दुःखित स्वर से बोला, "शीला, मुझे समाज की परवाह नहीं। माता-पिता से मुझे पूर्ण आशा है कि वे मेरे इस काम में बाधा नहीं डालेंगे।"

शीला ने धीरे से कहा, "परन्तु मेरे माता-पिता ऐसा नहीं होने देंगे।" कहते कहते उसके नेत्रों में फिर आँसू भर आये। शीला रोती-रोती बोली—"तीन चार दिनों में लाहौर जाना है। मुझे भूल जाना; समझ लेना कि स्वप्न था! आई थी यहाँ हृदय लेकर परन्तु हृदय देकर जा रही हूँ। समझ लूँगी, देवता के दर्शन करके उनकी भेंट चढ़ा आई हूँ।"

विपिन सिर नीचा किये देर तक बैठा रहा, फिर एक ठंडी सास लेकर बोला—"जाओ शीला, तुम सुखी रहो यही मेरी आन्तरिक इच्छा है!"

शीला रोने लगी।

... ...

तीन चार दिन व्यतीत हो गये। विपिन घर से बाहर नहीं निकला। वह शीला को भूलना चारता था; परन्तु एक क्षण को भी वह उसे नहीं भुला पाता था। शीला लाहौर चली जायेगी!—यह सोच कर उसके सारे शरीर में वृश्चिक दंशन की वेदना होने लगती थी। शीला के न पाने से उसका सारा जीवन बेकार हो जायेगा; परन्तु वह कर क्या सकता है? भावों ने उसे पागल बना दिया है!

आज तीन चार दिन बाद विपिन फिर शीला के घर गया। शीला और श्याम सुन्दर स्टेशन जाने के लिये तैयार ही थे। शीला बहुत उदास थी। विपिन को देखा तो उसका मुरझाया हुआ कमल सा मुख खिल उठा। श्यामसुन्दर उसे देखते ही बोल उठा—"ओह विपिन, आ तो गये! मैं तो समझता था कि चलते समय भी तुम्हारे दर्शन नहीं हो सकेंगे!"

विपिन ने कहा—"हाँ, इन दिनों कुछ तबियत ठीक नहीं थी। उसी कारण नहीं आ सका था।"

"हाँ कल मैं तुम्हारे घर गया था, मालूम हुआ कि तुम सो रहे हो, इसी लिये लौट आया।"

थोड़ी देर तक श्याम सुन्दर बातें करता रहा फिर किसी काम से बाहर चला गया। शीला वहीं बैठी थी। विपिन ने कहा—"तो शीला तुम जा रही हो!"

शीला के नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे। इस प्रश्न का यही उत्तर था! तब फिर उसने विपिन को एक लिफ़ाफा दिया। लिफ़ाफे में उसका एक छोटा चित्र था।

यथा समय तीनों स्टेशन पहुँचे। रेल आई। विपिन का हृदय बैठने लगा। आज उसकी शीला उसे छोड़ कर जा रही है। और रेल चल दी! दोनों का हृदय एक दूसरी ओर खिंचा चला जा रहा था। यही अन्तिम दर्शन थे।

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पोस्ट-मास्टर

('कुंभ')

पोस्ट-मास्टर ने उलापूर पोस्ट आफ़िस में पहिले-पहल चार्ज लिया। उलापूर एक छोटा सा ग्राम था। वहाँ एक फ़ैक्टरी थी और उसके मालिक के प्रयत्न से वहाँ यह पोस्टऑफ़िस खुला था।

पोस्ट-मास्टर कलकत्ता का रहने वाला था। वह जल से निकाली हुई मछली के समान जीवन व्यतीत करता था। उसका आफ़िस और रहने का कमरा पास-पास ही था और समीप ही एक पुराना तालाब भी था, जिसका जल काई से हरा हो रहा था। यहाँ उसका कोई साथी न था परन्तु उसे अधिक काम नहीं करना पड़ता था। कभी-कभी वह दिल बहलाने के लिये कविता लिखता था और उनमें गाँवों का प्राकृतिक वर्णन करता, परन्तु वास्तव में उसे तभी अतीव प्रसन्नता होती जब किसी प्रकार इन वृक्षों की जगह पर वहाँ पक्की सड़क हो जाती और आकाश ऊँचे-ऊँचे मकानों से छिप जाता।

पोस्ट-मास्टर का वेतन बहुत ही कम था। वह अपने हाथों अपना भोजन बनाता। घर का ऊपरी काम रतन किया करती थी। रतन गाँव की एक माता-पिता विहीना लड़की थी। सन्ध्या समय जब सूर्य डूबने लगता और गाँव के किसान अपने घरों को लौटने लगते, तब पोस्ट-मास्टर अपने कमरे में लैम्प जला कर पुकारता, "रतन!"

रतन बाहर बैठी हुई मानो इसी आवाज़ का इन्तज़ार करती थी; पूछती—"क्या आपने मुझे बुलाया है?"

"हाँ, क्या कर रही हो?"

"मैं रसोई घर का चूल्हा जलाने जा रही हूँ।"

वह कहता—"ओह, चूल्हा फिर जलेगा, पहिले हुक्का लाओ।" और तब रतन हुक्का लिये हुए कमरे में प्रवेश करती। पोस्ट-मास्टर कभी-कभी उससे पूछता—"अच्छा रतन, तुम्हें अपनी माँ की याद है?"

रतन अपनी माँ के बारे में कुछ जानती थी और कुछ भूल चुकी थी। उसके पिता उसे उसकी माँ से अधिक प्यार करते थे और इस कारण से उसे पिता की अच्छी तरह याद थी। पोस्ट-मास्टर सन्ध्या समय काम पर से घर लौटता। रतन पोस्ट-मास्टर के पैरों के पास ज़मीन पर बैठ जाती। वह सोचती, उसका एक छोटा भाई था और बचपन में कितनी बार उसने उसके साथ तालाब में मछली मारी थी! इन बातों में वह माता-पिता के बारे में सोची हुई सारी बातें भूल जाती। इसी प्रकार बात करते-करते बहुत देर हो जाती और पोस्ट-मास्टर को खाना बनाने में आलस लगता। रतन जल्दी-जल्दी रोटियाँ बनाती और सुबह का बचा हुआ भोजन दोनों के लिये काफ़ी होता।

... ...

एक दिन दोपहर को वर्षा हो जाने के कारण ठंडी हवा बह रही थी। पोस्ट-मास्टर के पास कोई काम न था। सामने वर्षा से धुली हुई पेड़ों की पत्तियाँ और आकाश में कहीं कहीं बादल के टुकड़े नज़र आ रहे थे। वह सोच रहा था—ओह! काश,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहाँ कोई होता जिससे मैं अपने हृदय की बातें कह सकता !" उसने एक ठंडी साँस ली और पुकारा—"रतन !"

रतन उस समय एक अमरूद के पेड़ के नीचे बैठी हुई अमरूद खा रही थी। उसकी आवाज़ सुनकर वह दौड़ती हुई आई और बोली—"दादा, आपने मुझे बुलाया है ?"

"हाँ। मैं तुम्हें पढ़ाना चाहता हूँ।" और वह दोपहर भर उसे पढ़ाता रहा। थोड़े ही दिनों में रतन वर्णमाला के सभी अक्षर पहिचान गई।

कई दिनों से लगातार वर्षा हो रही थी। गाँव के गड्ढ़े, तालाब सभी पानी से भर गये थे। गाँव की सड़कों पर चलना बहुत ही मुश्किल हो गया था। बाज़ार भी बन्द था। आकाश मेघाच्छन्न था। रतन बाहर दरवाज़े पर बैठी हुई अपने मालिक के बुलाने का इन्तज़ार कर रही थी परन्तु उसने रतन को नहीं बुलाया। अन्त में, हार कर वह अपनी पुस्तक लेकर कमरे में घुसी। उसने देखा कि, वह पलंग पर चुपचाप पड़ा हुआ है। यह सोचकर कि वह आराम कर रहा है, रतन बाहर लौटना ही चाहती थी कि पोस्ट-मास्टर ने पुकारा—"रतन !"

वह लौट पड़ी और बोली—"दादा, क्या आप सो रहे थे ?"

उसने दर्द भरी आवाज़ से कहा—"मेरी तबियत अच्छी नहीं है रतन ! मेरा सिर, देखो, कितना जल रहा है !"

इस एकान्त और वर्षा के दिनों में उसकी तबियत किसी से बात करने को चाहती थी। वह ठंडी साँसें भर रहा था। रतन फ़ौरन गाँव के डाक्टर को बुला लाई और रोगी को उसकी बतलाई हुई गोलियाँ थोड़ी-थोड़ी देर पर देती रही। कुछ दिनों में वह अच्छा हो गया। उसने अपने दिल में पक्का इरादा कर लिया कि वह उस गाँव में नहीं रहेगा। उसे वह जीवन असह्य था। उसने फ़ौरन कलकत्ते को टान्सफ़र के लिये अर्ज़ी लिखी।

रतन, पोस्ट-मास्टर के अच्छे हो जाने पर फिर दरवाज़े पर आकर बैठने लगी परन्तु अब वह उसे नहीं बुलाता था। जब कभी वह घबड़ा कर कमरे के अन्दर देखती तो वह उसको कुर्सी पर या बिस्तरे पर पड़ा पाती। रतन उसकी बुलाहट का इन्तज़ार करती और वह अपनी अर्ज़ी के जवाब का।

क़रीब एक हफ़्ते बाद उसने रतन को बुलाया। रतन फ़ौरन कमरे के अन्दर पहुँच कर बोली—"आप ने मुझे बुलाया है ?"

"हाँ"—वह बोला—"कल मैं जा रहा हूँ रतन !"

"कहाँ जा रहे हो दादा ?"

"घर जा रहा हूँ।"

"कब वापस आओगे ?"

"मैं अब यहाँ नहीं आऊँगा।"

रतन ने और कुछ नहीं पूछा। वह कहता गया—"मेरी ट्रान्सफर की अर्ज़ी नामन्ज़ूर हो गई इसलिये मैंने इस्तीफ़ा दे दिया है।" थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। फिर रतन उठी और भोजन बनाने चली गई परन्तु आज उसने शौक से भोजन नहीं बनाया। जब वह खाना खा चुका तो रतन बोली—"दादा, मुझे भी अपने साथ घर ले चलोगे ?"

वह बड़ी ज़ोर से हँस पड़ा। उसे उस अबोध कन्या को इसकी बुराई बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। प्रातःकाल उठने पर उसने नहाने का पानी तैयार पाया। नहाने के बाद उसने रतन को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बुलाया। रतन कमरे में आकर चुपचाप खड़ी हो गई। वह बोला—"रतन, तुम परेशान न होओ, मैं अपनी जगह पर आने वाले से तुम्हारी देख-भाल करने को कह जाऊँगा।"

रतन रो पड़ी। वह बोली—"नहीं-नहीं, आप किसी से कुछ न कहियेगा। मैं अब नहीं रहूँगी।"

दूसरा आदमी आगया और उसने उसको चार्ज दे दिया। जाने के पहिले उस ने रतन को बुलाया और बोला—"रतन, यह लो, यह तुम्हें कुछ दिन तक मदद करेगा।" उसने अपने जेब से उस महीने का सारा वेतन निकाला और उसमें से जाने का खर्च निकाल कर बाक़ी रतन को देने लगा। रतन रोती हुई उसके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—"दादा, मैं हाथ जोड़ती हूँ मुझे तङ्ग न करो!" और वह भाग कर दृष्टि से ओझल हो गई।

वह ठंडी साँस लेकर आगे बढ़ा। नाव नदी के उतार की ओर बढ़ी। एक क्षण के लिये उसका हृदय रतन के लिये तड़प उठा। दिल में आया कि वह लौट जाय और रतन को लिवा लावे परन्तु नाव अब तक मझधार में पहुँच चुकी थी।

रतन अक्सर पोस्ट आफ़िस के चारो तरफ़ आँखों में आँसू भरे हुए इस उम्मेद से चक्कर लगाती है कि शायद वह एक बार फिर वापस आये!

—बङ्गला से।

राजा

(श्री बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

कड़कती धूप मानो आग की वर्षा कर रही थी। ऊपर लोहे की तरह प्राण-हीन नीला आकाश, एक बूँद पानी की उम्मीद नहीं! सारा शहर जल कर ख़ाक हो रहा था।

सड़क पर कंकड़ मानो जल रहे थे, पैरों में छाले पड़ जाते हैं। असहनीय गर्मी से मेरा कुत्ता हाँफ रहा था, बिचारे की जीभ निकली पड़ती थी।

इतने बड़े शहर की सड़क सूनी थी। इस आग बरसाने वाले आकाश के नीचे कौन निकलेगा जल भरने के लिए!

चार मंज़िल के उस शानदार मकान के सामने रास्ते पर से एक औरत हाथों में फूलों का गुच्छा लिए फिर भी लगातार टर्रा रही थी—मैले फटे पुराने कपड़े; धूप की आँच से उसके मुँह का चमड़ा सिकुड़ कर काला हो गया था। उसके पास ही एक लड़की पत्थर पर बैठी हुई थी। उसके फटे कपड़ों में से एक नवजात शिशु का मुख निकला हुआ था। वह बच्चा एक ख़ाली बोतल के मुँह पर की रबड़ को चूस रहा था। आँखें फाड़-फाड़ कर वह देख रहा था, बाहर के विशाल जगत् को—धूली से लिपटी हुई पृथ्वी के भूखे, प्यासे चेहरे को—बच्चा जैसे इसके क़ायदे को ताड़ गया। जो कुछ जानने लायक़ था—उसने सब जान लिया। माता की दुर्बल हड्डियों के बीच में बच्चे की दोनों आँखें सोकर थक गईं।

फूलवाली फिर से पुकार उठी—"मेरी बहिन,—मेरी गोदी में दूध-मुँहा यह बच्चा—पति इसे छोड़ कर चल बसा। बहुत दूर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से आई हूँ, बाबू, बड़ी मुसीबत में फँस गई हूँ, फूल के इन गुच्छों को आप ख़रीद लें—ईश्वर आप का भला करेगा!"

पत्थरों के टुकड़े वाले रास्ते के ऊपर वह माँ और वह नन्हा सा बच्चा आँखें उठाकर ताकते हैं—आँखों की निर्वाक भाषा में दुनिया भर की वेदना-मिश्रित प्रार्थना हो रही है!

"फूलों का एक गुच्छा ख़रीद कर हमें बचाईये—ईश्वर आप का भला करेगा—!"

महानगरी की तपाई हुई सड़क जल रही थी। फूलों का एक गुच्छा!

... ...

चार मंज़िल वाले मकान की खिड़कियों में गीले खस की टट्टियाँ लटक रही थीं। अन्दर बिजली का पंखा घूम रहा है। ऊपर का कमरा सब से अधिक ठण्डा—जन हीन। घर की दीवारें हरे रंग की थीं—दोपहरी में भी यहाँ पर मानों मनोहर सन्ध्या की छाया उतर आई है।

साफ़ सुथरे बिस्तरे पर माँ सो रही है। पैर के पास धाई की गोद में एक नवजात मोटा ताज़ा तन्दुरुस्त बच्चा—सुन्दरता से बच्चे का छोटा-सा मुख चमक रहा था—गोदी में उठा लेकर प्यार करने को दिल करता है।

चन्द्रमा के टुकड़े की तरह है वह बच्चा!

दिन के अन्त में तब तक शायद सन्ध्या भी उतर आई। नीचे के बड़े कमरे में घड़ी 'टन-टन' करके बज उठी। सब चञ्चल हो उठे—प्रार्थना का समय हो गया।

धाई उठकर धीरे से नीचे उतर आई।

प्रार्थना की गम्भीर ध्वनि चारो ओर फैल रही है। अनगिनित फूलों की सुगन्धि से हवा भारी हो रही है, और ऊपर के कमरे में नरम गद्देदार बिस्तरे पर माँ लेटी-लेटी मुसकरा रही है।

... ...

दोपहर के तपे हुये रास्ते की धूली में राजा को देखा—अब राजा को देखा महल की शान्तिमय निर्मल परिस्थिति में—वे अभी अपने राज्य में आ पहुँचे हैं!

—जॉन गाल्सवर्दी

मक्कारी

(श्री शान्ताकुमारी देवी)

एक बार बाबा से एक बहुत अच्छी कहानी सुनी थी—

जाड़ों के दिन थे। ख़ूब सर्दी; दाँत एक अजब 'कट-कट' की ताल पर थिरक रहे थे। रात को कोई नौ बजे भोजन से निबट कर हम सब बच्चे बाबा की बैठक की ओर भागे, जहाँ बाबा मसनदी तकिये के सहारे आधे लेटे हुये हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। एक मोटी सी रुई की रज़ाई में गर्दन से पाँव तक ढँके हुये, जिसमें से केवल एक झुर्रियों-दार हाथ निगाली थामने को निकला हुआ था, वे हम लोगों को देख कर अपनी बूढ़ी मूछों में मुसकराये और अपनी रज़ाई खोल कर एक-एक को उसमें छिपा लिया।

"सो जाओ सब," बाबा ने रज़ाई पर थपथपाते हुये कहा।

हम लोग कुनमुना कर सिकुड़ने लगे। पर नींद आवे किसे? बार-बार कोई सिर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिला कर, कोई हाथ-पैर हिला कर, बाबा की रज़ाई में ग़दर मचाने लगे। बाबा बेचारे की कमर में भी कई बार ठूले लग चुके थे। आख़िर कहाँ तक सहते, ऊपर से डपट कर बोले—"सोते नहीं हो ? क्या कूद-फाँद कर रहे हो !" और एक उठी हुई जगह को टटोल कर बोले—"क्यों री मुन्नी, तू सबसे ज़्यादा ऊधम कर रही है, ऐं !"

सुख्खी बोला—

"हाँ बाबा देखो, मेरे तब से बार-बार कोहनी मार रही है !"

"और तू बड़ा सीधा है, मेरी पीठ में घुटना अड़ाये जाता है !"—झल्ला कर मुन्नी बोली।

"अच्छा—अच्छा, तुम सब बड़े भारी फ़सादी हो; जाओ घर में माँ के पास सोओ। जब कान खींच खींच कर सुलाये जाओगे तभी ठीक रहोगे। चलो निकलो !" —बाबा ने कहा।

सब शान्त होकर लेट गये। एक ने धीरे से कहा "हूँ,.....माँ तो मारती है !"

फिर जब हुक्के की 'गुड़-गुड़' शुरू हुई तब रज़ाई के अन्दर भी 'घुसफुस' शुरू हुई।

आख़िर को कुछ मिनट बीतते बीतते बाबा का बनावटी क्रोध शान्त हो गया और वे फिर बड़े प्यार से सारी रज़ाई पर हाथ फेरने लगे।

इधर रज़ाई के अन्दर कुछ और ही मन्त्रणा हो रही थी। अन्त को निरंजन ने हिम्मत करके तनिक सिर निकाल कर कह ही दिया—"बाबा, एक कहानी सुना दो।"

"ऐं...?" बाबा पूछ रहे थे।

"बड़े अच्छे बाबा !"—मुन्ना बोला।

"हाँ बाबा !" मुन्नी ने ताली बजाते हुये कहा।

"अरे हाँ, ज़रूर बाबा !"—बब्बन चिल्लाया।

"नहीं, चुप हो सब, हमारे सब के अच्छे से बाबा, सुना दो ! ऊँ.....बोलो बाबा ?" निरंजन ने कूद कर पूछा।

बाबा किसी पर बिगड़े नहीं, हँस कर बोले—"तुम सब बड़े मक्कार हो !"

"ऐं...ऐं...ऐं !" सब बच्चे उछल कर बैठ गये।

"क्यों ? माँ से सोने का बहाना करके भाग आये हो और अब यहाँ कहानी सुनोगे ?...अच्छा सुनो, लेकिन सब लोग रज़ाई ओढ़े रहो, नहीं तो सर्दी लग जायेगी।"

बाबा ने सबको एक जगह करके लपेट लिया, और तब कहानी शुरू हुई—

एक बार और दो मिनट तक हुक्का गुड़गुड़ाने के बाद बाबा कहने लगे—

"अच्छा सुनो, एक मुसलमान था। यह उस समय की बात है जब मुसलमान भारत में राज्य कर रहे थे। उसका नाम था—'बन्दा हाफ़िज़।' वह बड़ा ही विद्वान आदमी था। उर्दू और फ़ारसी का बहुत अच्छा इल्म रखने वाला था, यहाँ तक कि सारा क़ुरानशरीफ़ उसने बहुत बार पढ़ा था और उसकी आयतें उसे मुँह ज़ुबानी याद थीं।

लेकिन वह बेचारा बहुत ग़रीब था। उसके पास, सच पूछो तो, दुबारा बदलने के लिये कपड़े तक नहीं थे। उसकी बीबी और बच्चों को कई-कई दिन बाद अन्न नसीब होता था। बेचारा हाफ़िज़ सुबह से शाम तक रोज़गार की तलाश में इधर-उधर घूमता किन्तु उसे कुछ न मिलता। भिक्षा वह किसी से माँगता नहीं था क्योंकि क़ुरान शरीफ़ में उसने पढ़ा था कि, भीख माँगना उस मनुष्य के लिये पाप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिसके चारो हाथ पैर सलामत हों। केवल मोहताजों को ही उसका अधिकार है इसलिये हाफ़िज़ को शर्म के साथ थोड़ा पाप बढ़ने का डर भी था।

सब से ज्यादा दुःख तो उसे इस बात का था कि उसकी विद्वत्ता का कोई आदर नहीं करता, उल्टे सब हँसी उड़ाते थे कि—'तुम तो बड़े भारी आलिम हो, तुम्हें किस बात की कमी हो सकती है ?'

हाफ़िज़ का नाम भी दुष्ट लोगों ने बदल दिया था, बच्चे हर समय उसकी फटी अचकन नोच नोच कर चिल्लाते—'बन्डे हाफ़िज़—हाफ़िज़ बन्डा !' तुम लोग जानते हो, 'बन्डा' किसको कहते हैं ? 'बन्डा' यानी 'बेदुम का जानवर !'

(यहाँ हम लोग खूब 'ही-ही' करके हँस पड़े।)

इसी तरह बहुत से दिन गुज़र गये। एक दिन हाफ़िज़ की बीबी ने कहा कि, 'तुम्हारे धर्मात्मापन के मारे हमारी जान चली जायगी !'

'तो फिर मैं क्या करूँ, तुम्हीं बताओ !' हाफ़िज़ ने रुआँसे होकर कहा।

'क्यों नहीं भीख माँग लाते ?' बीबी ने उत्तर दिया 'बच्चे भूख के मारे बिलबिला रहे हैं !'

हाफ़िज़ ने अन्दर कोठरी में जाके देखा तो छोटा बच्चा उससे लिपट कर बोला—'अब्बा, रोटी ?'

हाफ़िज़ की आँखों से आँसू बह चले। उसी रात को तय कर लिया कि अब वह दूसरा उपाय करेगा। 'मक्कारी' करके रोटियाँ चलायेगा, पाप के धन से गृहस्थी जमायेगा। और दूसरे ही दिन अपनी टूटी झोपड़ी बेच कर मय बीबी बच्चों के वह किसी दूसरे शहर को चल पड़ा।

उन दिनों दिल्ली में जो बादशाह राज्य करता था वह बड़ा ही कट्टर मुसलमान था, और बहुत से हिन्दूओं को जबरदस्ती मुसलमान बना चुका था। जो हिन्दू खुशी से इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेते उन्हें बादशाह की ओर से इज्ज़त और ऊँचे ओहदे दिये जाते थे।

हाफ़िज़ चलता चलता दिल्ली में आया और यहीं रह कर उसने अपनी मक्कारी साधने की सोची। बीबी बच्चों को एक सराय में ठहरा कर उसने स्वयं एक 'हिन्दू साधू' का वेष बनाया और एक 'शिव-मन्दिर' के चबूतरे पर बैठ कर माला फेरने लगा।

सन्ध्या को जब शिवजी की आरती का समय हुआ तो कई पन्डे-पुजारी और धर्मात्मा हिन्दू वहाँ आये। उसने हाथ जोड़ कर उनसे अपनी ग़रीबी का हाल कहा और सहायता माँगी, लेकिन यह किसी पर नहीं प्रकट होने दिया कि वह मुसलमान है।

किन्तु उन लोगों ने उसे वहाँ से उसी तरह फटकार दिया जैसे कि तुम देखते हो बहुत लोग भिखारियों को भगा देते हैं। तब हाफ़िज़ उसी वेष में उठ कर पास की मसजिद के द्वार पर जा बैठा और वहीं अपनी माला फेरता रहा।

उस समय शाम की नमाज़ हो रही थी। जब मुल्ला लोग नमाज़ पढ़ कर बाहर निकले तो मसजिद के द्वार पर एक हिन्दू फ़कीर को बैठा देखकर चकित रह गये। उन्होंने पूछा—'भाई, तू यहाँ कैसा आया ?'

'मैं बहुत ग़रीब ब्राह्मण हूँ—!' हाफ़िज़ ने प्रार्थना भरी करुण वाणी से उत्तर दिया—'हिन्दुओं के दरवाजों पर जाता हूँ; पर वे मुझे सिवाय गालियों के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और कुछ नहीं देते इसलिये झखमार के आपकी शरन में आया हूँ, आप ही कुछ मदद करें, परदेसी हूँ !'

मुल्लाओं ने अर्थभरी दृष्टि से एक दूसरे की ओर ताका। फिर एक बूढ़ा मुल्ला बोला, 'भाई साधू, हम एक हिन्दू की क्या मदद कर सकते हैं ? तुम तो हमारे हाथ का छुआ पानी तक नहीं ले सकते ! भाई तुम अपने उन्हीं पाखण्डियों के पास जाओ, वहीं कुछ काम निकलेगा, यहाँ बेकार ही आये.....'

'उन सब को तो टटोल चुका शाह जी, अब आप का ही भरोसा है, कुछ मदद कीजिये !' गिड़गिड़ा कर हाफ़िज़ ने कहा।

वही बूढ़ा फिर बोला—'एक बात है साधू, अगर तुम मान जाओ तो हम तुम्हारी बहुत कुछ मदद कर सकेंगे।'

'और सारी उम्र को ग़रीबी दूर हो जायेगी !'—दूसरे मुल्ला ने कहा।

हाफ़िज़ ने उन के पैर पकड़ लिये और वह बात पूछी।

मुल्ला बोला—'तुम अगर हमारा इस्लाम क़बूल कर लो तो हम तुम्हें सगे भाई से बढ़कर जानें, और तुम्हारी हैसियत व इज्ज़त हमारी ही तरह से हो ! बोलो, क्या कहते हो ?'

बन्दा हाफ़िज़ था तो मुसलमान ही, किन्तु यह ढोंग रचने के कारण इस प्रश्न से सिर झुका कर कुछ सोचने सा लगा।

उधर मुल्ला लोग मन ही मन प्रसन्न हो कर बादशाह से भारी इनाम मिलने की ख़ुशी में फूल कर कुप्पा हुये जा रहे थे।

एक ने फिर हाफ़िज़ से कहा—'भाई जान, इसमें सोचने विचारने की क्या जरूरत है ? बल्कि गुँजाइश ही नहीं है। तुम्हीं सोचो न, उस हिन्दूपन में तुम्हें क्या मिल रहा है जिसे छोड़ते तुम इस क़दर हिचकिचा रहे हो ? गालियाँ और बेइज़्ज़ती, है न ? और उधर हमारे इस्लामे पाक को क़बूल करते ही तुम्हें सब से पेश्तर इज्ज़त बख़शी जायेगी, रहने को घर दिया जायेगा, चार छः महीने के लिये खाना कपड़ा वग़ैरह दिया जायेगा चाहे कोई काम करो या न भी करो !'

'और बादशाह सलामत का तुमको कोई आला ओहदा बख़शना लाजिमी है।'—दूसरे ने हाँ में हाँ मिलाते हुये कहा।

हाफ़िज़ ने धीरे से सिर उठाकर कहा—'आप सब का फ़रमाना वाजिब है, लेकिन मैं जिस धर्म में पैदा हुआ, बड़ा हुआ, माँ-बाप से जो सीखा और अब तक निबाहा, उसे छोड़ते हुये मुझे बड़ा दुख होगा !'

इस बार बूढ़ा मुल्ला बहुत समझाकर बोला—

'अरे ना समझ, माँ-बाप तुझसे यह तो कह ही नहीं गये कि तू भूखो मर जाना ? और रही तकलीफ़, सो क्या यह तकलीफ़ भूख से भी बढ़ कर है ?'

हाफ़िज़ ने सिर झुका कर कहा—'नहीं, शाह साहब। भूख से ज़यादा सताने वाली दुनिया में कोई चीज़ नहीं है। लेकिन ख़ैर इस वक्त तो मैं जाता हूँ, अपनी घर वाली से सलाह करके कल सुबह फिर हाज़िर होऊँगा। देखिये वह मंज़ूर करे या नहीं।'

'हाँ-हाँ कोई हरज नहीं, लेकिन उसे सब बातें ठीक से समझा कर बतलाना। और लो यह एक मुहर, इसी से खाने पीने का सामान ले जाना।'—मुल्ला ने कमर में से एक छोटी थैली निकालते हुये कहा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाफ़िज़ मुहर लेकर सराय की ओर रवाना हुआ। उसका दिल ख़ूब उछल रहा था, लेकिन मन ही मन वह अपनी इस बेजा मक्कारी के लिये ईश्वर से क्षमा भी माँग रहा था।"

छोटे बच्चे कहानी सुनते सुनते ही सो गये थे, शायद उन्हें कहानी में कुछ मज़ा नहीं आया। वे लोग तो केवल 'राजा-रानी' की बात ही अधिक पसन्द करते थे। किन्तु मैं, निरंजन और बब्बन तीनों काफ़ी बड़े थे, इसलिये हमें कहानी में बड़ा ही आनन्द आ रहा था।

बाबा डिब्बी में से पान के बीड़े निकाल कर खा रहे थे और हम लोग 'फिर—फिर ?' की धूम मचाये हुए थे।

"हाँ तो फिर"—बाबा कहने लगे। "दूसरे दिन सुबह ही हाफ़िज़ मय बीबी बच्चों के मसजिद के द्वार पर पहुँच गया। उसकी बीबी एक फटी सी बिना किनारे की मैली धोती हिन्दू स्त्रियों की भाँति पहिने थी। और बच्चे भी ऐसे ही...

वहाँ मुल्ले लोग पहिले ही से तैय्यार बैठे थे। एक व्यक्ति की जगह चार को मुसलमान होते देख कर उनकी प्रसन्नता की सीमा न थी। चटपट बन्दा हाफ़िज़ को मूँड़ कर सबको क़लमा पढ़ा दिया। अब हाफ़िज़ फिर से मुसलमान बने।

बादशाह की ओर से उन्हें एक छोटा सा घर और कुछ रुपया दिया गया। जब उन्होंने नौकरी पाने के लिये दरबार में दरख़्वास्त दी तब मुसलमानों ने कहा कि 'तुम अरबी फ़ारसी तो पढ़े ही नहीं हो नौकरी कैसे करोगे ?'

उसी दिन लोगों ने सलाह करके एक बूढ़े मौलवी को रख दिया जो हाफ़िज़ को फ़ारसी पढ़ा दिया करे। हाफ़िज़ तो ख़ुद ही बड़े भारी विद्वान् थे, किन्तु उन्होंने अपने को कोरा निरक्षर ही साबित किया। जब मौलवी के पास जाकर पढ़ें उस समय जान-बूझ कर ऐसे उच्चारण करें कि मौलवी साहब को क्रोध आ जाये।

एक दिन की बात है। हाफ़िज़ मौलवी साहब से शाम के वक्त पढ़ रहे थे। एक जगह मौलवी साहब ने कुछ समझा कर उसे दोहराने को कहा। हाफ़िज़ ने ऐसी भद्दी तौर से मुँह बना कर उल्टा दोहराया कि मौलवी साहब बेतरह चिढ़ उठे और एक तमाचा तड़ाक से हाफ़िज़ के गाल पर रसीद किया !

तमाचा खाकर हाफ़िज़ का गाल सुन्न हो गया; किन्तु वह कुछ बोले नहीं, चुपचाप घर जाकर बिछौने पर लेट गये।... लेकिन सुबह उठते ही उन्होंने एक नई मक्कारी खेली।

फ़ौरन दौड़ते हुये मौलवी साहब के घर पहुँचे और बार-बार उनके क़दमों को चूमने लगे। मौलवी साहब इस अनोखे और बे वक्त के बर्त्ताव से घबरा उठे और पूछा कि—"यह क्या ?" हाफ़िज़ ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"कुछ नहीं, मौलवी साहब, आपके दस्तेपाक ने मुझ पर बड़ा करम किया। ख़ुदा ताला आपकी मुरादें हासिल करें !"

और भी कई आदमी जमा हो गये थे। मौलवी ने पूछा कि—"क्या करम किया भाई ?"

"कल रात तमाचा मार कर"—हाफ़िज़ बोले—"मैं रोते-रोते ख़ुदा से दुआ करते-करते सो गया था। आधी रात को यकायक मुझे कुछ ख़ुशबू सी आई। आँखें खोल कर देखा तो, तमाम कोठरी में एक उजाला सा बिखरा हुआ था और उसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीचो-बीच .खुदा का प्यारा बेटा खड़ा था —पीर पैग़म्बर मुहम्मद साहब !

उन्होंने अपनी आस्तीने पाक से मेरे आँसू पोंछे और मेरे सिर पर हाथ फेर कर बोले कि 'अय .खुदा की औलाद, तू इतना रंज क्यों करता है ? .खुदा के हुक्म ने मुझे तेरा रंज दूर करने को भेजा है। मैं मुहम्मद हूँ। बोल क्या चाहता है ?'

जितने मुसलमान वहाँ खड़े थे वे अवाक् रह गये, किसी को ज़ोर से साँस लेने की भी हिम्मत न रही।

हाफ़िज बोला—'तब मैंने उन पाक और लाहिसिल क़दमों में गिर कर .क़ुरान शरीफ़ सही पढ़ लेने की दुआ चाही क्योंकि वही बात मेरे रंज का बायस थी। उस फ़रिस्ते ने एक लमहे में मुझे .क़ुरान रटा दिया और फिर वह रूह ग़ायब हो गई। मैंने बाहर निकल कर देखा तो सुबह की सफ़ेदी आसमान पर झलक रही थी। पस आपके क़दमों में दौड़ा आया। अब कहिये क्या हुक्म है ?'

उसकी बात सब ने झूठी ठहराई किन्तु जब उसने १५-२० .क़ुरान की आयतें और उनका अर्थ शुद्ध उच्चारण से उन लोगों को सुनाया तब तो वे लोग दंग रह गये। दौड़ कर सब हाफ़िज के चरणों पर गिरने लगे। भला ऐसा भाग्य शाली कौन मुसलमान हो सकता था जिसको पैग़म्बर साहब दर्शन देकर .क़ुरान रटा जावें ? ऐसे आदमी को छूने से बहिस्त नसीब होता है। यह ख़बर बिजली की तरह शहर में फैल गई। मुल्ला-मौलवी सब चकित थे कि 'हमको नमाज रोज़ा-इबादत करते उम्र गुज़र गई लेकिन ख़्वाब में भी मुहम्मद साहब के दर्शन नहीं हुये—यह ज़रूर कोई पाक रूह है। तभी तो—।'

फिर क्या था ? हाफ़िज के ऊपर उसी समय से बताशों, फूलों और रुपयों-पैसों की वर्षा सी मच गई।

होते होते यह ख़बर बादशाह तक पहुँची। वह भी .खुद नंगे पाँव इनकी ज़ियारत को आया। एक बड़ी सी इमारत बनी और उसमें बन्दा हाफ़िज़ प्रतिष्ठित हुये, और झूठ-मूठ ही लोगों की मुरादें पूरी करने लगे।

धन का तो कहना ही क्या था ! बादशाह की तरह मौज करने लगे।...लो सुन ली कहानी ?—" बाबा ने पूछा।

हम लोग कहानी के अन्तिम भाग पर बड़े .खुश हुये। बाबा से मैंने कहा—"तब तो हाफ़िज़ ने बहुत अच्छा काम किया, .खूब उल्लू बना कर सब को ठगा !"

"नहीं बेटा, एक बात उसने पीछे से अच्छी की। वह यह, कि जब वह बहुत बुड्ढा होगया और उसकी बीबी मर चुकी थी, लड़के रोज़गार करने लगे थे, तो उसने एक ख़त बादशाह को लिखा, जिसमें अपनी सारी कहानी लिखी और माफ़ी चाही 'कि मैं कोई पीर नहीं हूँ, 'मक्कारी' से मैंने सारी 'वाह वाही' लूटी है, इसलिये मरने के बाद मेरी दरगाह न बनवाई जाये और एक मामूली आदमी की तरह मेरी क़ब्र बने।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महारानी

(श्री 'प्रेम' जौहरी, एम० ए०)

इन्होंने एम० ए० तो बहुत कम उम्र में ही पास कर लिया था लेकिन नौकरी की तालाश करते-करते मेरी उम्र २५ के क़रीब हो गई। सरकारी नौकरी के सब दरवाज़े मेरे लिये बन्द हो चुके थे; तब हताश हो कर मैं रियासत में नौकरी के लिये निकला। इसमें भी कई जगह टक्करें खानी पड़ीं, अन्त में भगवान् की कृपा से महाराजा साहब के Revenue Minister साहब को मेरे हाल पर कुछ दया आ गई और उन्होंने मुझको ३५) रुपये वेतन पर अपने यहाँ प्राइवेट तौर से नौकर रख लिया और इतनी कृपा और की कि मुझ को अपने बड़े महल में ही एक कमरा रहने को दे दिया। मिनिस्टर साहब श्री राय बहादुर कुँवर देवेन्द्र सिंह जी सी० आई० ई० बड़े ही अच्छे स्वभाव के आदमी थे। वह ग़रीबों तथा मुझ से बेकारी के मरे हुओं पर बड़ा तरस खाया करते थे।

थोड़े दिनों के बाद राय बहादुर साहब वायदे के अनुसार मुझे अपने न्यू डिपार्टमेन्ट में ही ४०) रुपये पर नौकर रखा दिया। अपने कालेज में मैं टेनिस काफ़ी अच्छा खेलना सीख गया था, यहाँ तक कि एक साल तो Champion भी रहा था। इन राय बहादुर साहब को टेनिस का बड़ा शौक़ था। वे स्टेट क्लब के भी सेक्रेटरी थे। उनके बँगले पर भी एक 'टेनिस लॉन' था। फलतः आफ़िस के काम तथा टेनिस के खेल को देख कर उन्होंने अन्त में महाराजा साहब से खास सिफ़ारिश करके मुझे १००) रुपये पर अपने ही प्राइवेट सेक्रेटरी की जगह दिलवा दी। तब मुझे रायबाहादुर साहब के महल की बराबर वाली छोटी कोठी ही रहने को मिल गई थी। कोठी में मैं, मेरा रसोईया तथा एक चौकीदार थे। यह कोई नई बात न थी, जैसा कि आजकल पढ़े-लिखे लड़कों में अक्सर हुआ करता है; मैं भी Bachelor ही था। प्राइवेट सेक्रेटरी के ओहदे पर पहुँच कर मैं भी स्टेट क्लब का मेम्बर बना।

(२)

'स्टेट क्लब' की सिलवर जुबिली थी। महाराजा साहब तथा महारानी साहिबा और रियासत के सभी बड़े-बड़े लोग बुलाये गये थे। रायबहादुर साहब ने चाय इत्यादि का इंतज़ाम मेरे ही ज़िम्मे कर दिया था। मेरी शुरू से ही ऐसी आदत थी कि मैं किसी पर भी विश्वास नहीं किया करता था। जहाँ तक भी मुमकिन होता था, सब काम अपने ही आप करने की कोशिश किया करता था। इसमें मुझे ज़्यादातर सफलता भी प्राप्त होती थी। स्टेट में टेनिस के खेल का Standard कुछ ऊँचा नहीं था, इस लिये 'अंधों में काने राजा' की तरह इस जुबिली के अवसर पर भी मैं ही चैम्पियन रहा। मुझे माहारानी जी के हाथ से 'स्वर्ण पदक' मिला। पर मुझे सब से बड़ी खुशी इस बात की थी कि महाराजा साहब तथा महारानी साहिबा की नज़रों में मैं ख़ूब बढ़-चढ़ गया। नौकरी में तरक्की की यही पहली सीढ़ी हुआ करती है, यह बात रायबहादुर साहब ने पहिले से ही सुना दी थी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इनाम बाँटे जाने के बाद At Home के लिये सब लोग घास के मैदान में कुर्सियों पर जाकर बैठे। रायबहादुर साहब महाराजा साहब की निगाह में चढ़े हुए थे। सुतरां चाय Serve करने का काम भी मेरे ही सिपुर्द था। महारानी साहिबा ने चाय की तारीफ़ करते हुये रायबहादुर साहब से मेरा Introduction पूरी तौर से कराने को कहा। थोड़ा-बहुत तो वह मुझको पदक प्रदान करते समय ही जान चुकी थीं। मुझको भी उनके बारे में इतना मालूम हो चुका था कि वे एक बड़े राजा की इकलौती पुत्री थीं, अत्यन्त सुन्दर तथा शिक्षिता भी थीं। सुना जाता था कि बी० ए० पास थीं। उनके कहने पर रायबहादुर साहब ने मुझको दुबारा चाय लाने को कहा। महारानी जी को चाय बहुत पसंद आई। मेरी मेहनत सफल हुई। उनकी प्रशंसा का शुक्रिया अदा करते झुक कर सलाम करके चला आया। क्लब की सिलवर जुबिली की कामियाबी पर रायबहादुर साहब की बड़ी तारीफ़ हुई, यहाँ तक कि उसी मौक़े पर, महाराजा साहब ने उनको आनरेरी लेफ्टीनेन्ट भी बना दिया। अब रायबहादुर साहब मुझसे और भी प्रसन्न हो गये।

(३)

मैं सब बातें प्रायः रायबहादुर साहब की सुपुत्री ऊषा से कह दिया करता था। वे मुझे बहिन के समान थीं। मेरे लिये उस नई जगह में सब कुछ वही थीं। वे रियासत के सभी हालचाल मुझको बतला दिया करती थीं। उनको मुझसे बड़ा प्रेम था। हरेक मुसीबत के समय वही काम आया करती थीं। सच तो यह था कि, उन्होंने ही मुझको इस ऊँची पदवी पर पहुँचा दिया था। वह मेरी उन्नति पर बहुत प्रसन्न हुआ करती थीं। उम्र में मुझसे छोटी थीं; पर यह मुझे कहना ही पड़ेगा कि बुद्धि तथा राय देने में मैंने उनको अपने से कहीं बढ़-चढ़ कर पाया। वे सुन्दर थीं, मेरे यहाँ बहुधा आया करती थीं, मैं भी उनके यहाँ रोज़ सुबह, नहीं तो शाम को आया करता था। रायबहादुर साहब ने हम लोगों की इस घनिष्ठता का मतलब कुछ और समझते हुये एक मर्तबा मेरी शादी का भी प्रस्ताव ऊषा के साथ किया था। पर हम तो पहिले ही एक दूसरे को 'भाई-बहिन' मान चुके थे। वह प्रस्ताव पैदा होते ही ख़तम हो गया।

(४)

मुझे अपनी नई जगह पर काम करते हुये कुछ थोड़े दिन बीते होंगे कि मैंने अपनी मेज़ पर हिज़ हाईनेस महाराजा साहब की दस्तख़ती एक चिट्ठी देखी जो कि और सब Departments में भी घूम चुकी थी। उसमें उन्होंने महारानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी की नई जगह के लिये अर्ज़ियाँ माँगी थीं। वेतन ३००) रुपये माहवारी था, तिस पर एक बड़ा बँगला मुफ़्त रहने के लिये और एक फ्री मोटर कार! मुझे यह सब बातें बड़ी आकर्षक जान पड़ीं। मैंने तुरन्त ही रायबहादुर साहब की राय लेकर उनके ज़रिये से ही अर्ज़ी दे दी। मैं, 'उषा बहिन' की भी इस मामले में राय लेना न भूला था, उन्होंने इस पर यही कहा था कि मैं यह अर्ज़ी देने में कुछ अच्छा नहीं कर रहा हूँ; पर मैं ने ३००) रुपये तथा मोटरकार का लालच देते हुये ऊषा का मुँह बन्द कर दिया। मुझे इस बात का भी पता चल चुका था कि इस नई नौकरी के बारे में रियासत के बाहर भी अख़बारों में छापा जा चुका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। भला अर्ज़ी देने वालों की क्या कमी थी! हज़ारों अर्ज़ियाँ आई। Interview की तारीख़ निश्चित की गई। केवल बीस लड़के बुलाये गये थे। उनमें से मेरा नाम भी रियासत के पुराने नौकर की हैसियत से चुन लिया गया था। Interview कमेटी में हर हाईनेस महारानी जी तथा दो और रियासत के मंत्री लोग थे। यों तो बहुत सी परीक्षायें पास कर चुका था और नौकरी की तलाश में दसियों इन्टर-व्यूज़ में भी बड़े बड़े आदमियों के सामने गया था, पर यह पहिला अवसर था जब कि एक महिला और तिस पर महारानी के सामने जाना था। मन अन्दर से यही कह रहा था कि 'तुम नहीं लिये जाओगे!' क्योंकि वहाँ पर एक से एक Qualified लड़का आया हुआ था; पर कुछ हिम्मत करके मैं अपना नम्बर आने पर बेधड़क कमरे में चला ही तो गया। चूँकि मुझे सफलता की तनिक भी आशा न थी इस लिये मैंने ख़ूब निडरता के साथ सब प्रश्नों के उत्तर दिये। यह बात तो मेरे दिमाग़ से बिल्कुल उतर ही गई थी कि मुझे एक स्वर्ण-पदक इन्हीं महारानी जी के ही हाथ से मिल चुका था; ख़ैर, यह सब बातें फ़ाइल पर थीं।

(५)

एक महीने बाद नतीजा मालूम हुआ। मैं उस समय छुट्टी पर घर आया हुआ था। ऊषा ने मुझको बधाई का तार दिया था। उस समय मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही। मैं ने अपनी पूरी छुट्टी कम करा कर अपनी नई जगह का चार्ज ले लिया। अब अपनी तक़दीर पर बहुत अभिमान हुआ कि उसने कितनी जल्दी मुझको इतनी ऊँची पदवी दिलवा दी! नई जगह पर मेरी बड़ी इज़्ज़त थी। काम कम था। महाराजा साहब ने कुछ छोटे छोटे डिपार्टमेन्ट्स महारानी जी के नीचे दे रक्खे थे। बस, उन्हीं का थोड़ा सा काम तथा महारानी जी का थोड़ा सा प्राईवेट काम मुझको करना पड़ता था। बाक़ी समय महारानी जी की पेशी में लगता था। वे बहुत कुछ काम अपने ही आप किया करतीं थीं। बाज़ बाज़ समय तो मैं महारानी जी की योग्यता को देख कर दंग रह जाता। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ करता कि आख़िर उनमें इतनी योग्यता आई तो कहाँ से! बड़े से बड़े संगीन मामलों को वे मिनिटों में तय कर दिया करतीं थीं। उम्र भी कुछ ज़्यादा न थी, २६ वर्ष के लगभग होगी। उनके महल में एक बहुत सुन्दर आफ़िस का कमरा था, उसके बगल में मेरा आफ़िस था। महल से मिला हुआ यानी उसी कम्पाऊन्ड में थोड़ी दूर के फ़ासले पर मेरे रहने के लिये एक Guest house दे दिया गया था।

एक दिन काम की ज़्यादती के कारण महारानी जी ने मुझको चन्द ज़रुरी मामलात को तै करने के लिये रात को बुलाया। क्लब से खेलने के बाद मैं क़रीब ८ बजे के महल पर पहुँचा। जाड़ों की ठंडी रात, तिस पर तेज़ बारिश! ख़ैर! मोटर थी, लेकिन ठंड ज़रुर बहुत ज़ोरों की पड़ रही थी। ओवर कोट पहिने हुये था, उसको उतार कर मैं महारानी जी के आफ़िस में चला गया। मैं यह समझ कर घुसा था कि महारानी जी वहाँ न होंगी; परन्तु कुछ ऐसा हुआ कि ज्यों ही मैं घुसा, महारानी जी ने कमरे में पदार्पण किया। मैं कुछ ठिठक सा गया, पर महारानी जी का इशारा पा कर मैं 'नमस्कार' करके बैठ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गया। कोई आध घंटा सब काम ख़तम करने में लगा होगा। मैं उठ कर चलने को हुआ, बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी। यह देख कर महारानी जी ने ठहरने को आग्रह किया। आज मुझे महारानी जी रोज़ से ज्यादा प्रसन्न जान पड़ी। गहरी काली साड़ी पहिने हुई थीं, होंठों पर मुस्कराहट आ गई। ऐसा मालूम हुआ जैसे कि पूर्णिमा का चाँद काले बादलों में से झाँक कर मुसकरा रहा हो! महारानी से मैं 'your Highness!' कह कर पुकारा करता था, पर आज इस समय वे कुछ नाराज़ सी होकर बोलीं—"आज आप को सिर्फ़ 'रानी' ही कहना होगा।" मुझे इस से बड़ा अचंभा हुआ कि आज महारानी जी इस क़दर ख़ुश क्यों हैं। बहुत देर तक कमरे में निस्तब्धता रही। केवल दीवार पर टँगी हुई 'क्लाक' उस गहरी ख़ामोशी को तोड़ रही थी या बाहर के बादलों की गड़गड़ाहट और पानी का शोर।

कमरे के अन्दर की ख़ामोशी को तोड़ते हुये महारानी जी कहने लगीं—"आप को वह क्लब की सिलवर जुबिली पर चाय की बात याद है जब कि मैंने आप से दुबारा चाय लाने को कहा था? आप ने टेनिस में कमाल कर दिखाया था! फ़ाइनल में माधोपुर के युवराज को कितनी सावधानी के साथ हराया था।"

मुझे यह सब सुनते ही एक एक बात याद हो आई, लेकिन मुझे यह समझना एक कठिन समस्या थी कि आख़िर महारानी जी का इन सब बातों का इस समय ज़िक्र करने से क्या मतलब था। मेरा हाथ आफ़िस टेबिल पर था।

महारानी जी ने मेरे हाथ के ऊपर अपना कोमल हाथ रखते हुये कहा—"क्या आप उस समय यह समझे थे कि कोई आप पर सब कुछ खो चुका है? वह 'स्वर्ण पदक' जो मैंने आप को दिया था उसके साथ मैं कुछ और भी दे चुकी थी।" यह कहते कहते उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया। मेरे जिस्म में बिजली सी दौड़ गई। हक्का बक्का रह गया! साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे थी। मुझसे कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। ज़ुबान जैसे तालू में चिपक गई हो।

महारानी जी कहती ही गईं—"आप जानते हैं कि आख़िर यह सब क्यों किया गया? केवल आप को अपने ज्यादा नज़दीक लाने के लिये। हम औरतें हैं, जो बात को इतने दिनों तक सीने में छिपाये रहती हैं, अब आज मैंने सब कह ही डाला! आप..."

मैं चुप था—बिल्कुल चुप! मुझसे बिल्कुल न बोला गया। मानो बेहोश हो कर यह सब कुछ सुना था। महारानी जी ने मेरा चेहरा फ़क् देख कर मेरा हाथ छोड़ दिया और घबरा कर मोटर में मुझे बैठा आईं। बिदा होते समय मुझसे इतना ज़रूर कहा, "मेरी हालत पर कृपा तथा दया की नज़र रखना। हम औरतें हैं, जानवरों की तरह ज़ुबान नहीं!" और फिर मेरे हाथ को चूम लिया! इन शब्दों में मुझे दीनता सी जान पड़ी; पर मैं तो डरा हुआ था, जैसे कि कोई लड़ाई के मैदान से डर कर भागा जा रहा हो! मुझे नहीं याद कि मैं किस तरह से मोटर चला कर अपने बँगले तक आ पाया। कानों में सिर्फ़ यही वाक्य गूँज रहे थे कि, 'मेरी हालत पर कृपा तथा दया की नज़र रखना; हम औरतें हैं, जानवरों की तरह ज़ुबान नहीं!' मुझे इन सब बातों पर यक़ीन ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं आ रहा था। मालूम हो रहा था कि, कानों ने धोखा दिया। महारानी अगर किसी की तरफ़ देख भी लेती थीं तो वह काँप जाता था, आज वे मुझसे क्या क्या कह गईं? मुझे शक था कि कहीं महारानी जी नशे में तो न थीं? फिर यह ख्याल आया कि वे तो नशा कभी नहीं पिया करतीं। वे तो तमाम रियासत में total prohibition कर चुकी थीं।

... ...

ख़ैर, मैं असली बात की तह तक न पहुँच सका। बग़ैर खाना खाये ही लेट गया। रात भर नींद न आई; मेरा सिर चकरा रहा था। ज्यों त्यों करके रात काटी। सुबह होते ही मैं 'ऊषा बहिन' की तरफ़ चल दिया। यह सब बातें कह कर अपने दिल का बोझा हलका करना चाहता था। पिछली रात की वे बातें सब एक स्वप्न के समान मालूम हो रही थीं। ऊषा से सब बातें कह डालीं, पर उन्हें बिलकुल भी ताज्जुब न हुआ, उन्होंने केवल इतना ही कहा कि—"मैं तो पहिले ही जानती थी कि इसी यकायक उन्नति में कुछ न कुछ भेद ज़रूर था।"

(६)

मैं अपने बँगले पर तो लौट आया। हृदय में रात की उस विचित्र घटना से बड़ी खलबली मची हुई थी। इस परेशानी के कारण मैंने सुबह भी व्रत रक्खा और आफ़िस चला गया। महारानी जी के सामने उस दिन भी पेशी को गया। कोई ख़ास बात नहीं हुई। वे रोज़ की तरह गंभीरता से काम करती रहीं। मेरी तरफ़ आँख उठा कर भी न देखा। पर मेरे हाथ काँप रहे थे, दिल धकधक कर रहा था। महारानी जी के आज के व्यवहार को देख कर विश्वास हो चला कि कल रात की बातें महज़ हँसी में कही गई थीं।

इस तरीक़े से क़रीब एक महीना बीत गया। मैं सब बातें भूल चुका था। होली के दो तीन दिन पहले की बात है; मुझे महारानी जी के हाथ का लिखा हुआ 'निमन्त्रण पत्र' मिला कि मुझे होली वाले दिन उनके यहाँ जाना है। मुझे आश्चर्य इसी बात का था कि यह बात तो मुझसे आफ़िस में भी कही जा सकती थी। लेकिन वे महारानी थीं, शायद यह बात उनके शान के ख़िलाफ़ हो।

होली का दिन भी आ गया। महल का चपरासी मुझको बुलाने आया। मैं उसके साथ हो लिया। आज तक महारानी जी के महल के अन्दर नहीं गया था। यह पहिला ही अवसर था। मैं अन्दर चला गया। महारानी जी एक हाल में बड़े सोफ़े पर बैठी हुई थीं। हाल कमरा बड़ी क़ीमती चीजों से सजा हुआ था। उनको कमरे में देखकर मैं रुक गया; पर उन्होंने खुद ही मुझको अन्दर बुला लिया। दिल में उनके प्रति अपने अफ़सर की इज्ज़त थी इसीलिये मैं खड़ा रहा। मुझे आज उनकी हालत भी उसी रात की सी मालूम हो रही थी। वे बहुत ख़ुश थीं। उन्होंने मुझ से बैठने को कहा, पर मेरा दिल अगली बातें सोच कर धड़क रहा था। नौकरों को जाने का हुक्म देकर, महारानी जी मेरे क़रीब ही आकर बैठ गईं। मैं उठने लगा, उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया! जिस्म में काटो तो ख़ून नहीं! इतना डर गया था कि कमरे में से भागना चाहता था।

महारानी जी मेरी हालत को ताड़ कर बोलीं—"आख़िर आप इतना डरते क्यों हैं?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैं कुछ नहीं समझ सका कि महारानी जी ने क्या कहा। फिर भी मैंने अब की मर्तबा कुछ हिम्मत बाँध कर नीची निगाह करके कह ही डाला, "क्या आप मेरी परीक्षा ले रही हैं ?"

यह बात सुनकर वे ठट्ठा मार कर हँसी, हँसी से तमाम कमरा गूँज गया। वे कहने लगीं, "आज तो होली का दिन है ! प्रेमियों के लिये आपस में मिलने-जुलने का सब से सुन्दर दिवस !" यह कहते-कहते उन्होंने मेरा हाथ ज़ोर से दबा दिया।

अब मुझ से न सहा गया। मैं बाग़ी बन चुक था, हाथ छुड़ा कर खड़ा हो गया और कह सुनाया, "मैं विश्वासघातक नहीं बनना चाहता हूँ। महाराजा साहब क्या कहेंगे ? आख़िर, यह आपको हो क्या गया है। मैं तो आपके चरणों का सेवक हूँ, आप को मुझ पर दया करनी चाहिये ! जब आपने मुझे आश्रय दिया है तब मुझ को निबाह लीजिये।"

यह सुनते ही रानी जी रोने लगीं। उन का सिर कोच के तकिये पर था और आँखें आँचल से ढँकी हुई थीं। उफ़ ! मेरे सामने कितना भयानक दृश्य था। मैंने उनसे पूछा कि, आख़िर वे मुझको इस क़दर क्यों प्यार करती हैं। इस पर उन्होंने केवल इतना ही जवाब दिया कि यह सब वक़्त की बात थी ! उनकी आवाज़ में दर्द था। मेरा दिल कोई पत्थर का तो था नहीं। कहाँ तक नहीं पसीजता ! तिस पर रानी जी सुन्दर भी थीं। परन्तु मुझे महाराजा साहब का बड़ा डर लगा हुआ था। कमरे में बिलकुल ख़ामोशी थी। मैंने चलने की इजाज़त माँगी। रानी जी ने मेरा हाथ फिर ज़ोर से पकड़ लिया और मेरे कंधे पर सिर रख कर रोने लगीं। मैं बड़े शिशोपंज में था। ·····रात के बारह बजे तक !···गुलाल की ख़ूब बौछार रही, महारानी जी महज़ इतने में ही ख़ुश थीं कि, मैंने उनकी सब बातें सुनकर भी उनका कहना मान लिया था। 'क्लाक' ने बारह के घंटे बजाये। महारानी जी अब मुझ से ख़ुश थीं, इसलिये कहने पर मुझे जाने की इजाज़त दे दी।

(७)

बँगले पर वापिस आकर मैंने यह बात ख़ूब अच्छी तरह समझ ली कि अब मैं, जो कि रानी जी के एक प्रेमी की नई पदवी पा चुका था, उनके प्राइवेट सेक्रेटरी की जगह पर काम करने के लायक़ नहीं रहा हूँ।

उषा के पास जाकर आदि से अन्त तक हाल कह सुनाया और कहा, "अब मैं एक लम्बी छुट्टी पर घर जाना चाहता हूँ।"

उषा निरुत्तर रहीं। उन्हें मेरे छोड़ने का बहुत अफ़सोस था। बिदाई के समय मेरी भी आँखें डबडबा आईं। वे मेरी सच्ची शुभचिंतिका थीं। मैंने छुट्टी की दरख्वास्त दे दी थी। मैं घर लौट आया। यहाँ आकर अपना 'त्यागपत्र' भेज दिया। नौकरी तो छूट गई, लेकिन मुझे यही संतोष है कि मैं गिरने से बच गया और महारानी भी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपहार

(श्री श्यामकुमारी देवी)

भाग्य की बात थी। दोनों का जन्म दिन एक ही साथ पड़ता था। जाने किस पुण्य से एक ने दूसरे को पाया था। दोनों शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे थे।...

शहर के एक कोने में छोटा सा घर। उसी में दोनों सुख पूर्वक दिन काट रहे थे। एक दूसरे को जाने कितने प्रेम से देखते थे। कितना दृढ़ बन्धन था!...

नई साल प्रारम्भ हुई। दोनों का जन्म दिन निकट आ पहुँचा। दोनों ने एक दूसरे को उपहार देने की सोची।

पति के काम पर चले जाने के बाद वह सोच में पड़ गई। तब एकाएक उसे ख्याल आया; दौड़ कर कोठरी में पहुँची और सन्दूकची उठा लाई। सन्दूकची खोली; फिर वह गिनने बैठी—कुल ग्यारह रुपये! यही उसकी सम्पत्ति थी। इतना उसने अपना पेट काट कर बचाया था। सोचने लगी, ग्यारह रुपये से काम न चलेगा! वह चाहती थी कि, अपने पति की घड़ी के लिये एक सोने की चेन भेंट करे लेकिन रुपया?

तभी फ़ौरन उसे अपनी साड़ी का ध्यान आया; साड़ी बहुत दिनों से 'बार्डर' न होने के कारण रक्खी हुई थी। वह एक असली काम का बार्डर चाहती थी, इसीसे अभी तक वह यों ही पड़ी हुई थी। सोचा कि इस साड़ी को बेंच कर रुपये जमा किये जावें तो अवश्य चेन का मूल्य निकल आवेगा।

और साड़ी लेकर वह बाज़ार गई।

हाँ, सचमुच ही उसने अपनी वह साड़ी बेंच डाली। और साड़ी बेंच कर वह एक सोने की चेन लेती आई!...

इधर पति भी काम से अवसर पाकर बाज़ार गये और एक 'बार्डर' ख़रिदने को विचारा। जेब में हाथ डाला। जेब ख़ाली! उसी समय अपनी घड़ी पर नज़र गई। फिर क्या था, सारा काम बन गया! घड़ी बेंच दी और एक 'बार्डर' ख़रीद लिया!

... ...

जन्म दिवस को दोनों सुबह उठ कर अपना-अपना 'उपहार' काग़ज़ के थैलों में निकाल कर लाये और एक ने दूसरे को भेंट देनी चाही।

परन्तु यह क्या? न इसके पास घड़ी और न उसके पास साड़ी।

सब बात खुल गई।

"रख लो फिर काम आवेंगे"—सहसा दोनों के मुख से निकल पड़ा और उन्होंने बहुत ख़ुशी से वह जन्म दिवस मनाया।

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूल-चूक

(बी० एस० एस०)

मुझे गृहस्थी में आये हुए बीस वर्ष से अधिक ही हुए होंगे परन्तु मेरी स्मृति में एक दिन भी ऐसा नहीं है जब हम दोनों ने परस्पर प्रेम पूर्वक कुछ क्षण व्यतीत किये हों। जब कभी मैं प्रसन्न-चित्त होता हूँ तो श्रीमती जी का पारा १०४ डिग्री पर होता है और जब उनके दिल बहलाने का समय आता है तो मैं हवा से बातें करता हुआ होता हूँ। इसमें अपराध दोनों का कहा जा सकता है और किसी का भी नहीं।

आरम्भ में मैं नौकरी पर बाहर ही रहा। वर्षों अकेले रहने से अकेले पन की आदत थी, फिर आज कल का समय और 'फ़ैशन का प्रभाव' दोनों ही मेरे लिये हानिकारक हुए। इधर माता-पिता ने देश में मेरे विवाह का भी प्रबन्ध कर लिया, और ऐसी लड़की के साथ जिससे मैं किसी प्रकार प्रेम नहीं कर सकता था। बहुत मना करने पर भी मुझको एक मास की छुट्टी लेकर घर आना ही पड़ा।

विवाह हो गया। सब प्रसन्न थे, परन्तु मैं नहीं।

फिर सोहागरात आई। श्रीमती जी का आकार देख कर ही मुझको घृणा उत्पन्न होने लगी। उनके व्यवहार ने तो मस्तिष्क को बिलकुल ही घुमा दिया। परन्तु फिर मैं उनके चन्द्रानन के दर्शन के लिये अवश्य उत्सुक था। झुक कर देख ही तो लिया! किसी तरह बुरी न होने पर भी मैं उनको 'सुन्दरी' कहने के लिये प्रस्तुत न था। बिना कुछ कहे ही बाहर उठ आया और ठंडी सड़क पर टहलने के लिये चला गया। न मालूम उस समय मुझको कैसे विचारों ने आकर घेरा था...।

इसके बाद मेरा एक-एक दिन एक-एक वर्ष के बराबर कटने लगा। चार छः दिन में सब महमान विदा हो गये। मैं भी छुट्टी समाप्त होने से पहिले ही अपनी नौकरी पर चला आया।

मेरा समय फिर वही हँसी-खुशी लेकर अपनी दिन-चर्य्या में कटने लगा। सुबह आठ बजे तक सोना। उठते ही नौकर से चाय माँगकर पीना, फिर स्नान के बाद भोजन करके दफ़्तर जाना। शाम को आकर नाश्ता करके बाकिङ्ग को जाना। लौट कर खाना खाने के बाद १०। ११ बजे तक यार दोस्तों में गाना बजाना, आदि-आदि। इसी प्रकार समय बीतता जाता था। कभी मन चलने पर या माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर दो-चार रोज़ की छुट्टी में घर हो आता था।...

जब गौने की तिथि आई तो बहाना कर दिया कि चार रोज़ से अधिक छुट्टी नहीं मिल सकती। दो दिन आने-जाने के लिये, एक दिन ससुराल और एक वर्ष का एक दिन किसी तरह घर पर व्यतीत करके भाग आया। श्रीमती जी के हृदय की भगवान जाने! पूछने वाला ही कौन था? थोड़े दिन रह कर बेचारी फिर मायके चली गई होंगी। लिखना पढ़ना तो कुछ जानती ही न थीं। जब कभी प्रयत्न करके पत्र लिख कर मेरे पास भेजती भी थीं तो चीटें की सी डाँगें! लिखावट देख कर मेरा हृदय घृणा से भर जाता था और कभी तो मैं उसको बिना पढ़े ही फाड़

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर फेंक देता था। उत्तर देने का अवकाश न होने के लिये तो आफ़िस में काम अधिक होने का बहाना ही पर्याप्त था।

समय व्यतीत होते कुछ नहीं लगता। मेरे गौने को पाँच वर्ष हो गये। इन पाँच वर्षों में मेरी गृहस्थी बिलकुल ही परिवर्त्तित हो गई। माता-पिता दोनों का स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् बड़ी विकट समस्या मेरे सामने आई। श्रीमती जी को किसके पास छोड़ा जाये? पिता के यहाँ भी अधिक छोड़ना ठीक न था, अब सिवा इसके कि अपने साथ लिवा कर ले जावा और कोई चारा न था।

सो मद्रास पहुँच कर एक गृहस्थी के लिये मकान किराये पर लिया। सब चीज़ें नये सिरे से इकट्ठी करनी थी। यदि उनको घर से ले जाता तो मूल्य से दूना किराये में ही खर्च हो जाता। कभी चलनी की माँग है तो कभी छाज की। एक न एक तक़ाज़ा लगा ही रहता था। कभी कभी तो इतना ग़ुस्सा आता कि मन करने लगता कि सब छोड़-छाड़ कर कहीं चला जाऊँ!

यहाँ पर अपनी गृहस्थी का थोड़ा ब्यौरा देना अनुचित न होगा। मैंने श्रीमती जी की माँग के अनुसार हर एक गृहस्थी की वस्तु जुटा दी थी और मेरा कर्त्तव्य भी यहीं तक था, परन्तु घर की कोई भी वस्तु क़ायदे में नहीं नज़र आती थी। कहीं दाल खुली पड़ी है, तो कहीं तरकारी बिखरी पड़ी है। बर्त्तन कुछ साफ़ कुछ मैले पड़े रहते थे। इसका उत्तरदायित्व श्रीमती जी ही पर था और मेरे लिये यह सब ठीक करना असम्भव था। जिसने बाबूपने में ही अब तक अपना जीवन व्यतीत किया हो उससे ऐसी आशा करना व्यर्थ था। हाँ, डाँट-फटकार तो चाहे जितनी मुझ से कोई करा लेता और इसमें मैं अपनी शक्ति भर चूकता भी न था। कभी कभी तो बेचारी मेरे रोब में आकर छकड़ी भूल जाती थीं और बजाय काम को ठीक करने के और भी ग़लत कर जाती थीं। गाँव की लड़की। बड़े कुटुम्ब में, आज़ादी के साथ पली हुई। उसके ऊपर एक गृहस्थी का पूरा भार छोड़ दिया था। सब से अधिक दुःख तो उसको यही था कि हरी-भरी गृहस्थी में से सुनसान में लाकर पटक दिया गया। फिर पति का प्रेम भी उसको पूर्णतया मिला न था। सिवाय रोने के बेचारी के पास कुछ चारा न था। जब दफ़्तर से लौटकर आता तो उन्हें रोते हुए ही पाता। बजाय सान्त्वना देने के इस अपशकुन पर दो-चार बातें और सुनानी पड़तीं जो कि घाव पर नमक का काम कर जातीं थीं।

कुछ दिन और इसी तरह बीत गये। जब ढंग कुछ सँभलता न देखा तो एक नौकर गृहस्थी के काम के लिये भी रखना पड़ा। एक नौकर जो मेरे पास रहता था; मेरा प्राइवेट नौकर था। वह सिवाय मेरे काम के और कुछ न करता। और वस्तुतः उसको मेरे काम से ही छुट्टी न मिलती थी। अब श्रीमती जी को सिवाय देख-रेख के और कोई काम न था। परन्तु उनके बस का यह भी न था। वे नौकर पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकती थीं। कारण कि कभी तो उसको इतना प्रेम करने लगतीं जितना कोई अपने निकट सम्बन्धी को भी न करेगा, या फिर उससे लड़तीं। वे यह नहीं जानती थीं कि नौकर से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये। अन्त में नौकर भी ऊब कर भागा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गृहस्थी फिर अपने पहिले ढंग पर आ गई। एक और नौकर रखा गया और वह भी इसी प्रकार निकल भागा।

अब मैंने सोच लिया कि नौकर रखना व्यर्थ है। रोते झींकते किसी प्रकार काम चलता था, परन्तु इससे मेरे मन को बड़ा क्लेश था। दफ़्तर में भी जब कभी काम से छुट्टी पाता तो गार्हस्थिक विवाद का ही ध्यान आ जाता था। मन में सोचता कि हे ईश्वर, कैसे काम चलेगा! मेरे सुखों के दिनों का क्या बिलकुल अन्त हो गया? सैकड़ों तरकीबें मन में सोचता परन्तु कोई भी काम न आती। सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहता। इसी चिन्ता के कारण मेरा स्वास्थ्य भी दिन पर दिन ख़राब होने लग गया। आयु के नीरस दिन इसी प्रकार व्यतीत होने लगे।

एक दिन आफ़िस से आने पर वही सीन फिर नज़र आया। श्रीमती जी सिसकियाँ भर-भर कर रो रही थीं। बिना कपड़े उतारे ही नीचे उनके पास पहुँचा। चारो ओर सब चीज़ें बिखरी पड़ी थीं। मैंने उनको बड़े प्रेम से अपने पास बुलाया और उनको रोने का कारण पूछा। बहुत ही प्रेमपूर्वक पूछने पर भी उनकी नाक भौं चढ़ गई और बोली—"मुझ से यहाँ अकेला नहीं रहा जाता, मुझको मेरे नैहर पहुँचा दो!" मैंने बहुतेरा समझाया परन्तु वे किसी प्रकार भी सीधी न हुईं। अन्त में हार कर मुझको भी गुस्सा आ गया। कह ही उठा—"इससे तो मर जाओ तो मेरा पिण्ड छुटे, मुझको आज़ादी तो हो जाये, अकेला रहता था तो न किसी की हाय थी—न किसी की हत्या, जैसा मेरे जी में आता था करता था, जहाँ मेरे मन में आता था जाता था!"

"तो अभी किसने मना किया है? मुझको मेरे घर पहुँचा दो, फिर जो तुम्हारे जी में आये करना!"

उनका यह स्वभाव मुझको बहुत ही बुरा लगता था कि किसी बात का जवाब दिये बिना न रहती थीं।

मैंने कहा—"न तो मैं जाने को मना करूँ, ना 'हाँ' करूँ—जो तुम्हारे जी में आये करो!"

उन्होंने अपने छोटे भाई को बुला लिया। और मुझसे आज्ञा लिये बिना ही वे चली गईं। मैंने भी कोई आपत्ति न की।

पितृ-गृह पहुँच कर कुछ दिन तो अपने विकल चित्त को शान्ति पहुँचाने में लगे, परन्तु उसके पश्चात् विरहाग्नि हृदय में धधकने लगी! परन्तु मुझको पत्र कैसे लिखतीं। उधर मैंने भी उनके जाने के बाद एक शान्ति का श्वास लिया और अपने आपको कुछ-कुछ पुराने ढंग पर लाने लगा।

जब श्रीमती जी को गये हुए दो-तीन मास बीत गये तो मुझको भी उनका अभाव अखरने लगा। कुछ अनमना सा रहने लगा। यहाँ पर यह लिखना अनुचित न होगा कि मैं शुरू से इतना आज़ाद रहने पर भी किसी बुरी संगत में न फँसा था। पहिले तो जब गार्हस्थिक जीवन का अनुभव ही न था इसलिये कोई बात अकेले रहते हुए नहीं मालूम होती थी, परन्तु इतने दिन सपत्नीक रह कर उसका अभाव—चाहे वह कलहमय ही था—मन को व्याकुल करने लगा।

उधर श्रीमती जी की व्याकुलता भी कुछ कम न थी। इसी बीच उनकी माता का देहावसान हो गया। फलतः मुझको वहाँ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दो एक रोज़ के लिये जाना ही पड़ा। परन्तु दोनों ओर के स्वाभिमान इच्छा होने पर भी हमारे मिलने में बाधक हुए। वहाँ की दशा तो मुझको भली भाँति मालूम हो गई। ननद भावजों में ख़ूब लड़ाई झगड़ा होता, उनकी भावज बात बात में ताना मारती कि तू अपने खसम की ही न हुई तो किसकी होगी! जिसको सुन कर श्रीमती जी ख़ून का सा घूँट पीकर रह जाती थीं। कर ही क्या सकती थीं? वह चाहती थी कि अपने घर के अभिमान में भाभी पर प्रभुत्व जमावें, पर आजकल के समय में यह कैसे हो सकता था?

ससुराल से लौटने के दो मास पश्चात् मुझको एक पत्र मिला। इस पत्र को पढ़ कर मैं अवाक् रह गया; लिखा था:—

"श्रीमान् बाबू जी,

मेरे पत्र को पाकर आप अचरज तो अवश्य करेंगे, परन्तु प्रसन्न भी होंगे क्योंकि आपके आन्तरिक हृदय की वेदना को मैं अच्छी प्रकार समझती हूँ।

मैं भी आपकी पत्नी की तरह एक दीन असहाय अबला हूँ जिसने अपना सब कुछ केवल अपनी मूर्खतावश खो दिया है। मेरे भी ऐश्वर्य पूर्ण गृहस्थी थी और आप की तरह परिश्रमी और सुन्दर पति थे! परन्तु हाय, क्रोध के एक आवेश में, न जाने कौन से पिछले कर्मों के फल से, मैंने एक क्षण में ही सब कुछ खो दिया! उसी के प्रायश्चित्त में इधर-उधर भटकती फिरती हूँ। अब मेरा अपना कहने के लिये इस संसार में कोई नहीं है।

इसी प्रकार भटकती हुई आपकी ससुराल के गाँव में भी आ पहुँची थी। ईश्वर ने अच्छा ही किया। जोहड़ के पास जो कुँआ है उसी के नज़दीक सोई हुई थी कि किसी के पैरों की आहट से जाग पड़ी। देखा कि एक युवती कुँए पर चढ़ी जा रही है। वह मुझको रात के अँधियारे के कारण देख न सकी। मैंने सोचा, यह इतनी रात गये यहाँ किस लिये आई होगी! यदि पानी भरने आती तो कोई वर्त्तन साथ में लाती। शङ्का और भय ने एक दम मुझको घेर लिया और मैं उठकर उसके पास गई। देखा तो किसी भले घर की रमणी मालूम पड़ी। मुझको देखते ही वह बहुत डर गई और भागने की चेष्टा करने लगी परन्तु मैंने उस को ढाढ़स दिया। न मालूम कैसे मेरी सहानुभूति काम कर गई! वह मेरे कंधे से लग-कर सिसकियाँ भरने लगी और ख़ूब रोई, और मैंने उसको रोने दिया। जब रोकर उसका मन कुछ हलका हुआ तो मैं उसको पास के बाग़ में लिवा ले गई और उससे कहा कि—बहिन, मैं भी स्त्री हूँ, तू मुझसे अपना दुःख कह; मैं बचन देती हूँ कि तेरा रहस्य किसी पर प्रकट न करूँगी। मेरे बहुत आग्रह करने पर उसने आद्योपान्त अपनी सब कथा सुनाई और कहा कि, 'बहिन, पति से अलग होकर सोचा था कि घर पर चैन से रहूँगी, परन्तु यहाँ पर माता जी के सामने तक तो कुछ मेरी पूछ रही, फिर इस चाण्डालिनी भाभी ने एक एक दिन कटना भारी कर दिया है। अब यह अनुभव हो रहा है कि पति के सिवाय संसार में स्त्री के लिये कोई नहीं है। जिसको योग्य कह कर माता-पिता दे दें उसीकी सेवा में जीवन बिताना कुल स्त्री का मुख्य लक्षण है। अब किस मुँह से उनके पास वापिस जाऊँ? न मैं इधर की रही न उधर की! इसी उधेड़बुन में कितने ही दिन से हूँ। बहिन'—उसने रोकर कहा—'मैं सच कहती हूँ कि आज तीन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिन से एक तिनका भी मुँह में नहीं गया। परन्तु कोई पूछने वाला नहीं! भाई—सहोदर भाई—भी इतना निठुर हो गया! वह अपती स्त्री के इतना वश में है कि बहिन की ख़बर तक नहीं ले सकता! इस सब का प्रायश्चित्त मैंने आत्महत्या ही सोची। आज अवकाश पाकर निकल भागी हूँ। बहिन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ तुम मुझको न रोको—न रोको!' इतना कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने उसको सान्त्वना दी और कहा कि तुम घबराओ मत, तुम्हारे उद्धार का मंत्र मेरे पास है। इन शब्दों के सुनते ही उसके व्यवहार में कुछ आशामय झलक प्रतीत हुई, परन्तु फिर थोड़ी देर बाद वह कह उठी कि 'मुझे जाने दो, मुझे जाने दो!' किसी प्रकार समझा बुझा कर मैंने उसको वापस किया।

बाबू जी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो स्त्री अपने स्वामी के प्रेम को खो चुकी है, उसके लिये रोने के सिवाय और कोई उपाय नहीं; परन्तु मैं स्त्री जाति के नाते उसकी ओर से इतनी प्रार्थना करती हूँ कि आप उसके बुलाने के लिये फ़ौरन लिख दें। आप गृहस्थी के किसी कार्य से न घबड़ावें। इसको मैं सब देख लूँगी और आप दोनों की सेवा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त करूँगी।

आप लौटती डाक से उत्तर दें क्योंकि मैंने उसको आज के दिन ही मिलने का वचन दिया है।

आपकी

कोई अपरिचिता।"

पत्र को पढ़ते ही मेरा हृदय सहानुभूति और पत्नी-प्रेम से भर गया। फ़ौरन छुट्टी लेकर चल दिया और किसी प्रकार लिवा ही लाया।

... ...

अब 'अपरिचिता' के प्रताप से मेरी गृहस्थी चमक उठी है। सब चीज़ें तरतीब में नज़र आती हैं। मुझको किसी बात के कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

परस्पर के मनोभावों के कारण श्रीमती जी से अब भी कभी कभी मनमुटाव हो जाता है; परन्तु 'अपरिचिता' बीच में पड़ कर शीघ्र ही उसको निबटा देती है। मैं मन ही मन कहता हूँ धन्य है ऐसी स्त्री! वह सदैव हम लोगों के काम में व्यस्त रह कर प्रसन्नचित्त रहती है। परन्तु जब कभी मैं उससे अपना परिचय देने के लिये कहता हूँ तो उसके नेत्रों में केवल दो आँसू ही देख पाताहूँ।

नव-दम्पति

यह जगह हवा खाने के योग्य थी। स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर एक नवदम्पति चहल क़दमी कर रहे थे—हाल में उनकी शादी हुई थी। युवक एक हाथ से युवती को आलिंगन किये था—युवती उसकी ओर झुकी हुई थी। बादलों की दरार में से चन्द्रमा ने उनकी ओर देख कर भवें सिकोड़ीं, मानो अपने व्यर्थ यौवन को सोचकर उसके मन में ईर्षा और विरक्ति हो रही है। 'लाइलाक' और 'वन-चेरी' फूलों की गंध से हवा भारी हो उठी थी। लाइन के उस पार से रात्रि के कीड़ों की लगातार आवाज़ आ रही थी...

युवती बोली, "कितना सुन्दर है साशा, कितना मनोहर है! सचमुच जैसे सब सोये पड़े हैं! देखो, देखो, उस छोटे वन की ओर देखो! कितना सुन्दर है, जैसे बड़े मीठे भाव से हम लोगों की ओर देख रहा है!—और ये मोटे मोटे टेलिग्राफ़ के खंभे—चुपचाप खड़े हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसे चारो तरफ़ के दृश्यों को जीवित कर दिया है,—मानो कह रहा है, वहाँ, दूर पर, वह, जैसे मनुष्य की आबादी है।...अच्छा, कहो, क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता, सच, जब बहुत दूर पर चलती हुई रेलगाड़ी की धीमी आवाज़ हवा में बहती हुई आती है!"

"हाँ...पर तुम्हारे दोनों हाथ कितने ठंडे हैं! तुम आज बहुत चंचल हो उठी हो, लगता है.....अच्छा, भारिया, आज रात को हम लोग क्या खायेंगे?"

"शोरवा और छोटी मुर्ग़ी—हम दोनों के लिये काफ़ी हो जायगा। और, तुम्हारे लिये शहर से 'सर्डीन' मछली के कुछ टुकड़े आये हैं।"

दिक होकर चन्द्रमा बादलों की आड़ में छिप गया। मानो पहाड़ और जंगल के किनारे मनुष्यों का सुख देखकर उसे अपनी निःसंग शय्या की बात स्मरण हो आई है!

"ट्रेन आ रही है!" भारिया ने कहा, "मुझे ट्रेन देखने में बड़ा आनन्द आता है!"

दूर पर आग की गेंद की तरह एंजिन की तीन आँखें जल रही थीं। प्लेटफ़ॉर्म पर स्टेशन मास्टर आया। लाइन की दोनों तरफ़ 'सिग-न्ल' की रोशनी जलाई गई।

"आओ चलो, ट्रेन को देख लें, फिर घर चलेंगे, क्यों?" कहकर साशा ने जमुहाई ली। "हम दोनों इतने आनन्द से हैं, है न भारिया?—कभी-कभी सन्देह होता है कि यह स्वप्न तो नहीं है!"

वह काले दानव-सी रेलगाड़ी निःशब्द प्लेटफ़ॉर्म पर आकर रुक गई। धीमे प्रकाशित डिब्बों की खिड़कियों पर आधे निद्रित चेहरे, टोपी और कंधे...

"अरे यहाँ, यहाँ!" एक डिब्बे में कोई चिल्ला उठा—"अरे यहाँ!...भारिया हम लोगों को स्वागत करने के लिये पति को भी साथ लाई है। वे—वहाँ खड़े हैं दोनों। भारिया! भारिया! यहाँ, यहाँ!"

डिब्बे से दो युवतियों ने शीघ्रता से उतर कर भारिया को आलिंगन कर लिया। उनके पीछे एक मोटी अधेड़ स्त्री, दुबली और लम्बी शक्ल का एक दाढ़ीवाला आदमी, दो बच्चे, साथ में ढेर-सा सामान लिये उतर कर खड़े हो गये—उनके पीछे नौकरानी और नौकरानी के पीछे दादी उतरी।

"हम लोग आ ही पड़े, साशा!" पुरुष ने साशा से हाथ मिलाते हुये कहना शुरू किया, "क्या बहुत देर से इन्तज़ार कर रहे थे? शायद सोच रहे थे कि चाचाजी नहीं आ सके, न?...कोलिया, कास्या, नीना, फ्रीका,—ये सब मेरे बच्चे हैं!...तुम लोगों ने साशा भैया को चूमा? हाँ—सब बाल-बच्चों को साथ लिये चले आये,—बस, सिर्फ़, तीन चार दिन के लिये,—आशा है कि तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी। नहीं, नहीं, बेटा, ख़ातिर-वातिर की कोई ज़रूरत नहीं है..."

सारे परिवार के साथ एकाएक चाचा के आजाने से नव-दम्पति चकित हो गये। जब चाचाजी चुम्बन के साथ अभिनन्दन में व्यस्त थे तब साशा के चित्त में जो दृश्य आया, वह यह है:—अतिथियों की सेवा के लिये अपने जो सिर्फ़ तीन ही कमरे हैं वे भी छोड़ देने पड़ेंगे; 'सर्डीन' मछली के टुकड़े, शोरवा और मुर्ग़ी—सब स्वाहा हो जाने में दो क्षण की भी देर नहीं लगेगी; चचेरे भाई-बहिन फूल तोड़ेंगे, स्याही फैंकेंगे, हो-हुल्लड़ मचायेंगे; चाची दिन भर अपने रोगों के व्योरे देती रहेंगी—अपने पैतृक ख़ानदान की बड़ाइयाँ प्रकट करती रहेंगी...

साशा ने विरक्ति के साथ पत्नी की ओर देखकर फिस-फिसा कर कहा, "सब तुम्हारे पास आ धमके! अब झमेला सम्हालो!..."

"मेरे पास क्यों, तुम्हारे पास आये हैं!—" उसकी भी आँखों और चेहरे पर घृणा और विरक्ति खिल उठी। "ये सब तो मेरे नहीं है, सब तुम्हारे ही ख़ानदान के हैं!"

फिर साशा ने चेहरे पर ज़बरन मुसकान लाकर स्वागत करने के स्वर में अतिथियों से कहा, "चलिये, चलिये, मुझे वास्तव में बहुत आनन्द हो रहा है!"

बादलों के पीछे से फिर चन्द्रमा दीखा, मानो नव-दम्पति की परेशानी देखकर वह मुसकरा रहा था। उसका कोई नाता-रिश्ता तो है नहीं!

साशा ने इसलिये मुँह फेर लिया कि कहीं उसकी विरक्ति और निराशा का भाव अतिथियों के निकट प्रकट न हो जाय। फिर हर्ष के स्वर में आनन्द प्रकट करते हुये कहा—

"आइये, चलिये—कितनी ख़ुशी की बात है कि आप लोग कृपा करके आये हैं!..."

—रूसी लेखक, एन्टन चेख़व।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

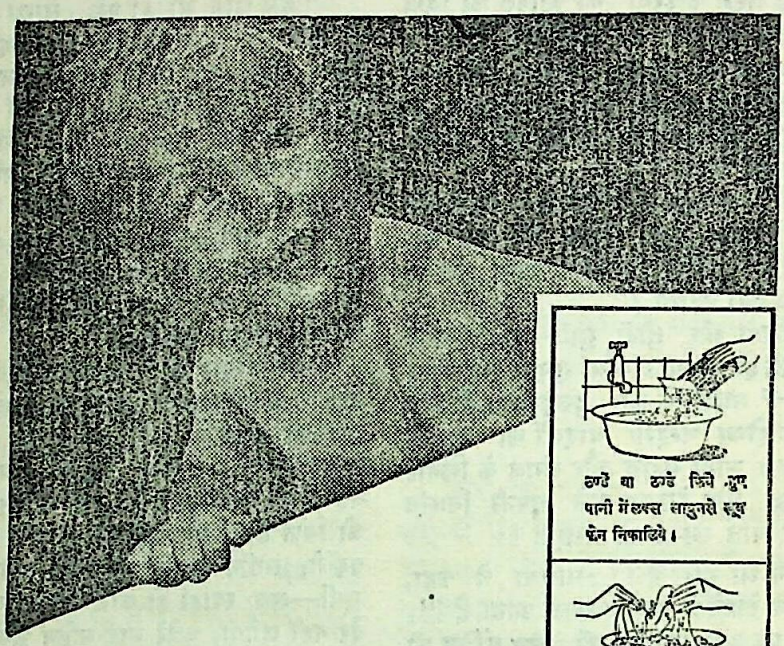

ठण्डे या ठण्डे किये हुए पानी में लक्स साबुनसे हल्का फेन निकालिये।

लक्सकी फेनमें कपड़ेको भिगोइये और मुलायमीके साथ दबे सौंदिये। रगड़िये मत। जितनी जल्दी हो सके धोइये।

अच्छी तरह धोइये। जोरसे हथाकर पानी मल निचोड़िये। कमजोर कपड़ोंको मुलायमीमें लपेट कर और आहिस्तेसे दबा कर पानी निकालिये। सुखाते समय धूप और तापसे बचाइये।

मांने मेरे कपड़ोंको लक्स से साफ किया।

बच्चोंके कपड़ोंके लिये केवल लक्स ही निरापद है। क्योंकि वे केवल लक्स हीसे मुलायम और आराम-देह रह सकते हैं। लक्सकी मातदिल फेन आपके फ्राकों और अन्दर पहननेके वस्त्रोंके लिये भी अच्छी है। इससे कपड़ा बहुत जल्दी और अच्छी तरह साफ होता है और इसका व्यवहार करना भी आसान है। सबसे बढ़कर तो लक्स निरापद है। लक्ससे धोये जानेपर कपड़े नये जैसे रहते हैं।

लक्स तेज ! आसान ! निरापद !
भारतवर्षमें केवल विशुद्ध वनस्पति तैलोंसे प्रस्तुत।

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

X-LX 568-50-55

HINDI

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

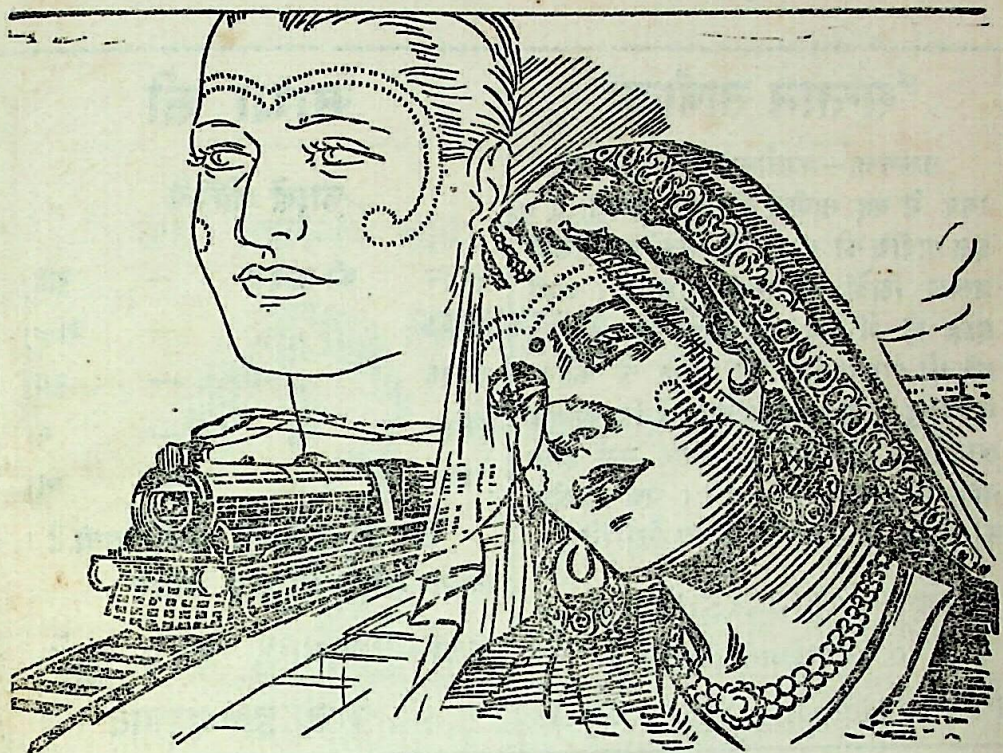

शुभ कामों में

रेलवेका सफर सस्ता और तेज है

जब विवाह पक्का हो जानेका शुभ-समाचार चारों ओर फैलता है तब उस सुख जोड़े के सगे सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग का हृदय उस विवाह के हंसी-मजाक और खाने-पीने में शामिल होने के लिये उछलने लगता है जो कि व्याह-शादी के मौके पर अनिवार्य हैं। रेलवेज आने-जाने का आदर्श मार्ग है—सस्ता, निर्भर योग्य और आरामदायक।

रेलवेज

भारत का सबसे सस्ता यातायात साधन

RBK 9

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सन्तान ताबीज़"

कलकत्ता—कालीघाट की दुर्गा जी ने स्वप्न में यह ताबीज़ की जड़ी बतायी है। इस ताबीज़ को कमर में बाँध कर सैकड़ों बन्ध्या स्त्रियों को बच्चा हुआ है। अभी हाल ही में एक ४३ साल उम्र की एक स्त्री को इस ताबीज़ की शक्ति से पहिला बच्चा हुआ है। हमारा दावा है कि, ताबीज़ लगाने के नौ मास के भीतर गर्भ होगा नहीं तो मूल्य वापस देंगे। एक ताबीज़ की कीमत ३)। अंग्रेज़ी में पत्र लिखिये।

पता—TABIZ ASHRAM,
9, Watgunj Street,
P.O. Kidderpore, CALCUTTA.

माया की

फ़ाइलें लीजिये

१९३८	की फ़ाइल	—	२॥)
१९३७	,,	—	२॥=)
१९३६	,,	—	२॥)
१९३५	,,	—	२)
१९३४	,,	—	२)

वी० पी० से नहीं भेजी जाती है। क़ीमत मनीआर्डर द्वारा भेजिये।

पता—"माया", १६४ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

जरमन पिस्तौल

इस पिस्तौल को हर आदमी अपने पास रख सकता है। इसका लाइसेन्स नहीं कराना होगा। आवाज़ बड़ी गर्जदार और भयंकर होती है, इसमें एक इञ्च लम्बे कारतूस लगते हैं। क़ीमत कारतूस सहित १॥) डेढ़ रुपया, डाकख़र्च ॥) आठ आना।

मेजीक स्लेट

यह स्लेट हर स्त्री पुरुष, पढ़े लिखे हुये लड़के-लड़कीयों के काम की है। इस पर लिख कर बगैर हाथ या पानी के लगाये ही सिर्फ जरा से इशारे से ही अक्षर लिखे हुये गायब हो जांयगे। दुकानदार इस चीज की शीघ्र एजेन्सी लें; बड़े जोरों की बिक्री हो रही है। नमूना एक स्लेट दो आने का टिकट भेज कर मंगावें।

मेजीक फोटोग्राफी

हमारे मेजीक फोटो कार्ड के ऊपर आप बगैर कैमरा के फोटो बना सकते हैं—सिर्फ पांच सेकेन्ड में! दुकानदार और फोटोग्राफर इस चीज़ को जल्द मंगावें। नमूना एक फोटो बनाने का कार्ड चार आने का टिकट भेज कर मंगा देखिये।

पता:—आर० पाल एण्ड कम्पनी न० M
पो० पुरुलिया (मानभुम) B.N.Ry

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 2946

CC-0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्षों पहननेके बाद भी नये जैसे

सनलाइट साबुन

से घरपर ही धोनेसे

रोजाना धुलाईके लिये सनलाइट साबुन व्यवहार कीजिये। जिन कपड़ोंको गेज धोनेकी जरूरत पड़ती है, वे सनलाइट साबुनसे धोनेपर बिलकुल नये जैसे मालूम होते हैं और उनमेंसे झागदार निकलती रहती है।

जो कपड़े सनलाइट साबुनसे धोये जाते हैं, वे उन कपड़ोंसे अधिक दिन टिकते हैं जो दूसरे घटिया और कड़े साबुनोंसे धोये जाते हैं। सनलाइट साबुनसे मैल आसानीसे निकल जाती है। धोते समय कपड़ोंपर इतने जोरसे साबुन नहीं रगड़ना पड़ता जिससे कोई नुकसान पहुंचे और न इतना पीटना ही पड़ता है जिससे उनके रेशे उड़ जाँय। अपने कपड़ोंको सदा घरपर ही सनलाइट साबुनसे, धुलवाइये—बारीक और धोये जानेवाले रंगीन तथा मोटे कपड़ेके लिये भी निरापद है।

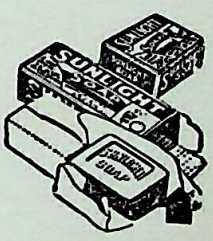

नये बक्समें दो अलग अलग बड़ी टिकियां होती हैं।

सनलाइट साबुन

भारतवर्षमें विशुद्ध वनस्पति तेलोंसे भारतीय श्रम द्वारा प्रस्तुत।

X-S 1284-50

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

HIND

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'माया' बेचने के लिये

एजेन्टों की आवश्यकता है

जिन शहरों में 'माया' की सोल एजेन्सी नहीं है, केवल वहीं एजेन्सी दी जायेगी। आकर्षक कमीशन मिलेगा। जो सज्जन 'डिपाज़िट' का रुपिया जमा करके एजेन्सी लेना चाहते हैं वे ही लिखा-पढ़ी करें।

मैनेजर—"माया" कार्यालय, इलाहाबाद।

सात सत्य !

१—नारी	की	सहनशक्ति
२—नारी	का	त्याग
३—नारी	का	मोह
४—नारी	का	कपट
५—नारी	का	संकोच
६—नारी	का	हृदय
७—नारी	की	मूर्त्ति

इन्हें आप जानते हों तो भी—
न जानते हों तो भी—
एक बार निकट से देखिये !
'छाया' में इन सातों की छवि है।

'छाया' में द्विजेन्द्र नाथ मिश्र की कहानियाँ हैं।

सुन्दर काग़ज़; डेढ़ सौ पृष्ठ !

केवल 'माया' के स्थायी ग्राहकों को, पोस्टेज सहित कुल ।॥=) में ! आर्डर के साथ ग्राहक नं० लिखिये।

—विद्याभास्कर बुक डिपो, चौक, बनारस सिटी।

प्रकाशक—क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफ़ी, १६४ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।
मुद्रक—श्रीयुत भक्तसज्जन, वेनवेलियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi